RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 59 अंक : 03 प्रकाशन तिथि : 25 फरवरी कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 मार्च 2022

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

जाति की फुलवारी में पुष्प बनाना,
ताकि मैं सौरभ से जग को रिझाऊँ

हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

हमारे आदरणीय सहयोगी

श्री कृष्ण सिंह राणीगांव

मुख्य ब्लॉक शिक्षा अधिकारी, बाड़मेर को उतकृष्ट प्रशासनिक दायित्व निर्वहन के लिए जिला प्रशासन, बाड़मेर द्वारा गणतंत्र दिवस पर सम्मानित किए जाने पर

हार्दिक बधाई एवं उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

-: शुभेच्छु :-

बाबू सिंह सरली	महेन्द्र सिंह तेजमालता एडवोकेट	नीम्बसिंह भीखसर	सुजान सिंह देदूसर	ईश्वर सिंह हरसाणी
रतन सिंह उदय नगर	देवी सिंह रानीगांव	सांवल सिंह भैंसड़ा	जब्बर सिंह अकोड़ा	छैल सिंह भीमरलाई
कमल सिंह गैंहू	नटवर सिंह जिजनियाली	अशोक सिंह भीखसर	महेंद्र सिंह तारातरा	नेपाल सिंह तिबनियार
नरेशपाल सिंह तेजमालता	गौरु सिंह सरली	महेंद्र सिंह ताणू मानजी	प्रेम सिंह दूधवा	दुर्जन सिंह दुधवा
प्रताप सिंह बांदरा	भगवान सिंह दुधवा	डॉ. स्वरुप सिंह मुंगेरिया	निम्ब सिंह आकोड़ा	गणपत सिंह बूठ
जबरसिंह भुरटिया	गणपत सिंह हूरो का तला	छगन सिंह लूणू	प्रेम सिंह लूणू	गणपत सिंह लाखणी
कंवराजसिंह रानीगांव	उदय सिंह लाबराऊ	समुन्द्र सिंह देदूसर	हरि सिंह रानीगांव	भवानी सिंह मुंगेरिया
	नरपत सिंह चिराना		विजय सिंह माडपुरा	

संघशक्ति

4 मार्च, 2022

वर्ष : 58 अंक : 03

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	06
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	07
☞ पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)	✍ श्री विरेन्द्रसिंह मांडण	10
☞ छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	✍ स्वामी श्री जगदात्मानन्द	12
☞ श्री क्ष. यु. संघ की हीरक जयन्ती पर	✍ श्री गुमानसिंह धामोरा	15
☞ यदुवंशी करौली का इतिहास	✍ राव शिवराजपाल सिंह इनायती	16
☞ विचार-सरिता (सप्तति लहरी)	✍ विचारक	18
☞ राजधानियों के निर्माण में जयपुर का योगदान	✍ श्री स्वरूपसिंह जिंझनीयाली	19
☞ मग भूल गया है जो	✍ श्री गिरधारी सिंह डोभारा	20
☞ योग का क्षत्रिय के जीवन में महत्त्व	✍ श्री विरमसिंह वरिया	23
☞ वर्तमान राजनीति और राजपूत समाज	✍ श्री नरपत सिंह रताऊ	26
☞ स्मृति शेष	✍ रतन कँवर सेतरावा	28
☞ सुआ धाई	✍ डॉ. ईश्वरसिंह चौहान	29
☞ लोक देवता पीथल देव जी	✍ श्री देवेन्द्रसिंह गौराऊ	32
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

पू. तनसिंहजी की जयन्ती :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक पू. तनसिंहजी की 98वीं जयन्ती 25 जनवरी को मनाई गई। हमारे जीवन को सार्थक बनाने का जिन्होंने हमको संघ के रूप में मार्ग दिया, प्रेरणा दी, पथ पर चलाया तथा सदैव मार्गदर्शन बनाए रखा उनकी जयन्ती का अवसर तो नई स्फूरणा प्रदान करता है। इसीलिए बड़े उत्साह के साथ जयन्ती मनाई जाती रही है। जयन्ती के अवसर पर बड़े कार्यक्रम किए जाते रहे हैं पर कोविड प्रतिबंधताओं के कारण इस वर्ष बड़े कार्यक्रम नहीं हो सकते थे इसलिए अनेक स्थानों पर स्थानीय स्तर पर कार्यक्रम आयोजित हुए।

आलोक आश्रम बाड़मेर में माननीय संरक्षक श्री भगवानसिंहजी के सान्निध्य में जयन्ती मनाई गई। संघप्रमुख श्री ने इस अवसर पर सायं 8.15 बजे ट्वीटर स्पेस पर वर्चुअल रूप से संदेश प्रसारित किया। संघशक्ति कार्यालय में इस अवसर पर भजनों का कार्यक्रम आयोजित हुआ। जयपुर में महिला मंडल ने अलग से कार्यक्रम आयोजित किया। जयपुर शहर में अलग-अलग स्थानों पर पाँच कार्यक्रम सम्पन्न हुए। जोधपुर शहर व आसपास की कॉलोनियों में 19 जगह जयन्ती कार्यक्रम सम्पन्न हुए। शेरगढ क्षेत्र में 20 जगह, भोपालगढ क्षेत्र में सात जगह, ओसियाँ-फलोदी क्षेत्र में 9 जगह, नागौर क्षेत्र में 31 जगह, पाली क्षेत्र में 23 जगह, बीकानेर व डूंगरगढ क्षेत्र में 14 जगह, चूरू क्षेत्र में 6 जगह, सीकर में दो जगह, सिवाना क्षेत्र में 8 जगह, बाड़मेर क्षेत्र में 18 जगह, पिपलाज में बालिका शाखा में, अजमेर क्षेत्र में दो जगह, दौसा क्षेत्र में तीन जगह, जालोर क्षेत्र में चार जगह, चित्तौड़ में, उदयपुर में, कोटा में, सूरतगढ में जयन्ती मनाई जाने के समाचार हैं। गुजरात में 48 जगह जयन्ती मनाई गई। दिल्ली, मौरना (उ.प्र.), पुणे, मुंबई की शाखाओं में, सूरत में, फरीदाबाद में, सिकन्दराबाद (तेलंगाना) में जयन्ती मनाए जाने के कार्यक्रम आयोजित हुए। सभी कार्यक्रमों में संस्थापक पू. तनसिंहजी का जीवन परिचय प्रस्तुत किया गया। संघ, जो उनकी कृति है, उसका महत्त्व समझाया गया।

क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन का स्थापना दिवस :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के अनुषांगिक संगठन क्षात्र पुरुषार्थ का चतुर्थ स्थापना दिवस 12 जनवरी को अनेक स्थानों पर मनाया गया। ट्विटर स्पेस पर वर्चुअल माध्यम से मनाए गये कार्यक्रम में अपने तीन वर्ष के काल में जो सामाजिक कार्य फाउण्डेशन द्वारा किए गये, उनकी जानकारी दी गई। फाउण्डेशन के उद्देश्य की जानकारी दी गई। राजस्थान विधानसभा में विपक्ष के उपनेता श्री राजेन्द्रसिंह राठौड़ तथा राजस्थान सरकार में मंत्री श्री प्रतापसिंह खाचरियावास भी सम्मिलित हुए। संघप्रमुखश्री की ओर से बधाई संदेश प्रेषित किया गया। बाड़मेर के कार्यक्रम में संरक्षकश्री का सान्निध्य प्राप्त हुआ।

कोरोना गाइड लाइन की अनुपालना में बाड़मेर जिले में 7 जगह, नागौर जिले में भी 7 जगह, पाली जिले में 8 जगह, जयपुर में 6 जगह, जोधपुर में तीन जगह, सिरोही, आसपुर, बांसवाड़ा, अजमेर, उदयपुर, चित्तौड़, चूरू, सूरतगढ़, सीकर, श्रीगंगानगर में, जालोर में 4 जगह, बीकानेर में तीन जगह तथा जैसलमेर जिले में 4 जगह स्थापना दिवस मनाया।

क्षात्र पुरुषार्थकी केन्द्रीय परिषद की प्रथम बैठक 16 जनवरी को पुष्कर में आयोजित हुई। 26 जनवरी, गणतंत्र दिवस पर 'भारतीय संविधान और हमारे पूर्वजों के जीवन मूल्य' विषय पर वर्चुअल गोष्ठी हुई। जिला समितियों की कार्ययोजना बैठकें भी सम्पन्न हुई। 22 जनवरी को नागौर और उसी दिन सीकर में क्षेत्र के लिए योजना बनी।

आभार प्रकटीकरण कार्यक्रम :

22 दिसम्बर, 2021 को श्री क्षत्रिय युवक संघ के 75 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में हीरक जयन्ती जयपुर में मनाई गई। इस अवसर पर समाज का जो सहयोग प्राप्त हुआ उसने इस जयन्ती कार्यक्रम को ऐतिहासिक बना दिया। अभूतपूर्व सहयोग समाज से प्राप्त हुआ। समाज के इस सहयोग के प्रति श्री क्षत्रिय युवक संघ कृतज्ञता का अनुभव प्रकट करता है। अपनी इस कृतज्ञता को प्रकट करने के लिए संघ समाज के बीच गया और स्थान-स्थान पर आभार प्रकट किया।

26 दिसम्बर को जयपुर में संघशक्ति प्रांगण में आभार प्रकटीकरण के कार्यक्रम में स्थानीय कार्य कर्ताओं को आमंत्रित किया गया। संरक्षक श्री के सान्निध्य में सम्पन्न कार्यक्रम में सहभोज भी रखा गया। इसी दिन जैसलमेर के संभागीय कार्यालय तनाश्रय में, दुर्गा महिला विकास संस्थान सीकर में, जायल स्थित काशीपुरा (नागौर) में, बणीर राजपूत छात्रावास चूरू में, सांचोर-रानीवाड़ा क्षेत्र के चितलवान में भी आभार प्रकटीकरण कार्यक्रम सम्पन्न हुए। 29 दिसम्बर को नारायण निकेतन बीकानेर में, 30 दिसम्बर को सिरोही में अतिथि इन होटल में, 31 दिसम्बर को लाडनू में कार्यक्रम आयोजित हुए। 1 जनवरी को वीर शिरोमणि दुर्गादास राठौड़ छात्रावास में, 2 जनवरी को जलंधरनाथ राजपूत छात्रावास सायला (नागौर) में, इसी दिनकेलवाद (सोजत के समीप) में, मध्य गुजरात संभाग के काणेटी में जिसमें अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए, जौहर भवन चित्तौड़गढ़ में तथा अजमेर प्रान्त में आभार प्रकट करने के कार्यक्रम सम्पन्न हुए। 8 जनवरी को उदयपुर में इस अवसर पर 'भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के सशक्तिकरण में श्री क्षत्रिय युवक संघ की भूमिका' पर भी गोष्ठी सम्पन्न हुई जिसमें अनेक विद्वान सम्मिलित हुए। 9 जनवरी को संभागीय कार्यालय तनायन, जोधपुर में तथा गोहिलवाड़ संभाग के वल्लभीपुर में भी समाज का आभार प्रकट किया गया। 15 जनवरी को तनायन जोधपुर में मातृशक्ति के स्नेह मिलन व सहभोज कार्यक्रम में, 16 जनवरी को आलोक आश्रम बाड़मेर में तथा इसी दिन कल्ला रायमलोत राजपूत छात्रावास-सिवाना में समाज का आभार प्रकट किया गया।

अन्य कार्यक्रम :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के द्वितीय संघप्रमुख पू. आयुवानसिंहजी की 45वीं पुण्यतिथि हनुवन्त छात्रावास जोधपुर में मनाई गई। बामाणु व काणेटी में भी पुण्य तिथि मनाई।

हीरक जयन्ती के तुरन्त बाद देवीकोट (जैसलमेर) में संघ का माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर 27 दिसम्बर से 2 जनवरी तक सम्पन्न हुआ। आसपुर (डूंगरपुर) में 30 दिसम्बर से 2 जनवरी तक बालिका प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हुआ। 12 फरवरी से 15 फरवरी तक आलोक आश्रम में दम्पत्ति शिविर सम्पन्न हुआ।

5 जनवरी को गिरी सुमेल बलिदानी रणस्थली पर राव जैता व राव कूंपा का बलिदान शिविर संघप्रमुखश्री के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ।

चलता रहे मेरा संघ

{माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा संघशक्ति प्रांगण में आयोजित विशेष शिविर में दिनांक 16.10.2007 को अपराह्न में उद्‌बोधित संदेश}

श्री क्षत्रिय युवक संघ की योजना अद्‌भुत व विचित्र योजना है। यह कहना तो बड़ी सरलता से हो जाता है कि हमारा, श्री क्षत्रिय युवक संघ का उद्देश्य परम-पिता परमेश्वर को प्राप्त करना है। अर्थात् यह जीव के ब्रह्म में मिलने की यात्रा है या यों कहें-आत्मा की परमात्मा में मिलने की यात्रा है। यह बात तो बड़ी सीधी लगती है पर इसकी योजना बड़ी विचित्र है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की इस यात्रा के अलावा भी लोग इसी उद्देश्य के लिए, परम पिता परमेश्वर से मिलने के लिये अनेक प्रकार से उद्यम करते हैं। अनेक रास्ते हैं। लोग ध्यान लगाते हैं, कोई जप करते हैं तो कोई तप का मार्ग अपनाते हैं। श्री क्षत्रिय युवक संघ का मार्ग अद्‌भुत इसलिए है कि एक सूत्र इसमें और जुड़ गया है। व्यष्टि (व्यक्ति) और परमेष्टि (परमात्मा) के बीच समष्टि (समाज) माध्यम बना, इसी से विचित्रता जुड़ गई।

भगवान को ऐसी क्या जरूरत थी कि उन्होंने संसार की रचना की और जीवों को रचकर भेजा और कार्य दिया कि मुझ तक वापस आओ। क्यों किया यह? यही तो उसकी लीला है, क्रीड़ा है, माया है। संघ का रास्ता भी इसी माया में से गुजरने का है। व्यष्टि का समष्टि में विलय हो, विसर्जन हो और इसी से ईश्वरोपासना हो। बड़ा कठिन है यह कार्य। सांसारिक माया से भयभीत होकर अकेले ईश्वरोपासना के लिए चल पड़ना सरल हो सकता है। पर संसार और उसकी माया के बीच रहकर उससे संघर्ष करते हुए परमेष्टि तक पहुँचने की योजना है यह। इसलिए अद्‌भुत है यह योजना। यह योजना, यह मार्ग कोमल भी है, तो कठोर भी है। यह मार्ग सुगम भी है तो दुर्लभ भी है। इसीलिए विचित्र है।

ईश्वर को प्राप्त करने के लिए संघ की या समाज की आवश्यकता ही क्या है? ईश्वर को प्राप्त करने के लिए दुनिया में रहने की आवश्यकता ही क्या? इस दुनिया को छोड़कर अलग साधना करें, उससे भी तो लोग ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर बढते हैं। पर संघ की साधना तो ऐसी है कि संसार में होकर निकलो, सांसारिक उत्तरदायित्वों का पालन करो पर संसार को पकड़ो नहीं और न संसार आपको पकड़ सके। यही इस मार्ग की अद्‌भुत बात है। ईशोपनिषद के मंत्र के अनुसार-**तेन व्यक्तेन भुंजिथाः**। सांसारिक सुविधाओं, भोगों के प्रति गिद्ध भाव न रखकर त्याग के साथ भोग करो। संसार में रहें और स्पर्श न करें, लिप्त न हों, ऐसा अद्‌भुत मार्ग चुना है। अकेले ही यात्रा में, साधना में अकेले होने के अलावा कोई तकलीफ नहीं। पर समूह के साथ यात्रा में कई कठिनाइयाँ आती हैं। हमने इन कठिनाइयों वाला मार्ग चुना है।

पू. तनसिंह के एक गीत की पंक्ति है-**तेरे लिए जगत हो कूप खाई, गिरने से डरना न, चलना संभल के**। कूप, खाइयों से भरा जगत का रास्ता हमने चुना है। गिर जाएँगे इसलिए चलें ही नहीं ऐसा नहीं सुझाया। कहा है चलना संभलकर, डरना नहीं है। माया के इस कूप खाइयों से बचने के लिये सदैव जागरूक रहना है। संघ में चलते हैं तो कोई अकेला रह जाए उसे पीछे नहीं छोड़ना है। संघ बनाने के लिए साथ चलें, पिछड़े नहीं। संघ में क्षणभंगुरता है तो अमरता भी है, दोनों के दर्शन होते हैं। इनका साक्षात्कार कर लें।

स्वधर्म ही ऐसा उद्देश्य है जो सबके लिए ही साध्य है। आध्यात्मिक दृष्टि से और जीवन के वास्तविक उद्देश्य की दृष्टि से देखा जाए तो स्वधर्म से ही तथा कर्तव्य कर्म के करने से ही मोक्ष का मार्ग खुला है।

– पू. तनसिंहजी

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

आदिकाल से काल चक्र चल रहा है। काल चक्र का पहला पड़ाव सत युग, दूसरा पड़ाव त्रेता युग, तीसरा पड़ाव द्वापर युग और चौथा व अन्तिम पड़ाव कलियुग है। काल चक्र यहाँ रुक नहीं जाता, कलियुग के बाद पुनः सतयुग, फिर त्रेता, इस तरह अनादिकाल से काल चक्र गतिमय है। इस काल चक्र की गति के साथ प्रत्येक युग में सत्व का क्रमिक ह्रास व तम की क्रमिक वृद्धि की प्रक्रिया चलती रहती है और कलियुग आते-आते सत्व गुण प्रायः लुप्त सा हो जाया करता है और तमोगुण का बोल बाला बढ़ जाया करता है। सत्ययुग से कलियुग तक सत्व गुणके क्रमिक ह्रास के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने जो कहा, उन्हीं की जुबानी –

''सत्य से त्रेता व द्वापर और सबके पश्चात् कलियुग यह मानव जीवन में सत्वगुण के क्रमिक पतन की परम्परा है। सतोगुण का क्रमशः प्रत्येक युग में ह्रास होता जा रहा है। कलियुग आते-आते सतोगुण पूर्णतः लुप्त हो जाता है। यह पतन गतिमय प्रकृति का सहज मार्ग है। बुरे कार्य के लिए कभी उपदेश देने की आवश्यकता नहीं रहती, वे तो संघर्षविहीन जीवन में अपने आप घुसने लग जाते हैं। उत्थान सदैव ऊर्ध्वगति की साधना से ही सम्भव है। प्रकृति की सहज ढलान के विरुद्ध सतत् संघर्ष के बिना उत्थान की कल्पना करना आकाश में महल बनाने के समान कार्य है। ऊर्ध्वगति प्रकृति का सहज मार्ग नहीं है-वह साधना का मार्ग है। यह एक महान और प्राकृतिक सत्य है जिसे सभी को स्वीकार करना ही पड़ेगा। कलियुग के बाद वापिस सत्ययुग को आना है, न कि द्वापर को, अर्थात् चारों युगों के चक्र में कलियुग के बाद सत्य युग की बारी आती है। यही सृष्टि की परम्परा है। कलियुग के निम्नस्तरीय तामसिक जीवन से सत्ययुग का उच्च स्तरीय सात्विक जीवन कीचड़ में कमल की भाँति उगता है। इस प्रकार सत्ययुग से कलियुग तक के पतन के बीच दो युगों का अन्तर है। वहाँ कलियुग से सत्ययुग के उत्थान में कोई समय नहीं लगता। उत्थान का यह परिवर्तन इतने थोड़े समय में जादू से नहीं होता, वह नैसर्गिक ढंग से होता है। इसीलिए भगवान को संसार के लिए इस परिवर्तन के हेतु नैसर्गिक साधन जुटाने की आवश्यकता होती है। उन्हें वह मार्ग अपेक्षित है जो घोर कलिकाल को सम्पूर्णता सत्ययुग में बदल डाले।''

गीता के अनुसार सत्य युग में धर्म के चारों चरण रहते हैं, त्रेता युग में धर्म के तीन चरण रहते हैं, द्वापर युग में धर्म के दो चरण रहते हैं और कलियुग में धर्म का केवल एक चरण शेष रहता है। जब युग की मर्यादा से भी अधिक सत्व (धर्म) का ह्रास हो जाता है, तब भगवान् सत्व (धर्म) की पुनः स्थापना करने के लिए अवतार लेते हैं।

यह सर्व भौमिक सत्य है कि इस सृष्टि में जब-जब भी सत्व (धर्म) का ह्रास और तम (अधर्म) की वृद्धि होती है तब ऐसी विषम परिस्थिति में जन मानस के बीच नव जागरण यानी युग परिवर्तन का संदेश लेकर ईश्वर किसी महापुरुष के रूप में इस वसुन्धरा पर अवतरित होते हैं। जैसा कि गीता में भगवान श्री कृष्ण ने बताया –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

सतयुग में नरसिंहवतार के रूप में, त्रेता युग में श्री राम के रूप में, द्वापर युग में श्री कृष्ण के रूप में भगवान आए और कलियुग में पूज्य श्री तनसिंहजी ने वही कार्य करना प्रारम्भ किया।

सत्ययुग में अत्यन्त बलवान दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पाप जब अधिक बढ गये तो भगवान ने नरसिंह रूप

धारण कर हिरण्यकशिपु की छाती अपने नखों से फाड़कर उसका अन्त कर अपने प्रिय भक्त प्रहलाद की रक्षा की। त्रेता में राक्षसों ने ऋषि-मुनियों को मारकर उनकी हड्डियों के ढेर लगा दिये थे। विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को साथ ले गये तो वहाँ खोपड़ियों व हड्डियों का ढेर देख श्रीराम में संकल्प जगा कि मैं क्षत्रिय हूँ, अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकता और उन्होंने ऋषि-मुनि ही क्या, जनमानस के रक्षार्थ दुष्टों, दुर्जनों और आततायी राक्षसों का संहार कर राम राज्य की स्थापना की, जिसे लाखों वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी लोग नहीं भूले हैं, आज भी उस राम-राज्य को याद करते हैं। द्वापर में कंस का आतंक अत्यन्त बढ गया था। श्रीकृष्ण का तो जन्म ही जेल में हुआ था। श्रीकृष्ण पर तो बचपन से ही एक के बाद एक राक्षसों का हमला होता रहा और वे उनका संहार भी करते रहे तथा लोगों को राक्षसों के अत्याचार से बचाते भी रहे। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा-''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्'' के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से जन कल्याण के लिए गीतोपदेश दिया और आसुरी प्रवृति वालों का संहार किया।

ईश्वर ने राम के रूप में अवतार लिया पर श्रीराम के काल में लोगों ने श्रीराम को अवतार नहीं माना, इसी तरह फिर ईश्वर ने श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया, पर श्रीकृष्ण काल में लोगों ने कृष्ण को भी अवतार नहीं माना, पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने ईश्वरीय तत्व को जागृत किया, लोग इन्हें भी अवतार नहीं मानेंगे, पर बीतते समय ने श्रीराम और श्रीकृष्ण के अवतार की पुष्टि की है, इसी तरह भविष्य में समय ही बतायेगा कि पूज्य श्री तनसिंहजी युगावतार थे।

अब देखना यह है कि पूज्य श्री तनसिंहजी को ईश्वरीय तत्व को जागृत करने की क्यों आवश्यकता पड़ी? इस बात को समझने के लिए हमें निम्नलिखित बातों पर गौर करना होगा -

क्षात्र धर्म सर्व धर्मों का प्रवर्तक और रक्षक, इस लोक में श्रेष्ठ, सनातन, नित्य, अविनाशी और मोक्ष पर्यन्त ले जाने वाला सर्वतोमुखी धर्म है। ऐसे श्रेष्ठ धर्म के पालन की इच्छा रखने वाले क्षत्रिय जब तक अपने स्वाभाविक कर्तव्य कर्म करते रहे, तब तक तो वे परमात्मा में जीते रहे तथा अपने हृदय में उनकी उपस्थिति अनुभव करते रहे पर दुर्भाग्यवश ऐसे श्रेष्ठ धर्म के पालन की इच्छा रखने वाले क्षत्रिय जब अपने स्वाभाविक कर्तव्य कर्म ही भूल गये तो उनकी दृष्टि परमात्मा से हट गयी और राग-द्वेष पर टिक गयी और वे यह भी भूल गये कि हमें क्षत्रिय कुल में जन्म मिला है, हम क्षत्रिय हैं।

संसार जब-जब भटका है, दिशाहीन बना है, तब संसार को मार्ग दिखाने वाला, उत्तरदायित्वों का बोध कराने वाला, सभी को संभालने वाला, सभी को साथ लेकर चलने वाला स्वयं क्षत्रिय ही मार्ग से भटक गया, असहाय व पंगु बनकर रह गया तो क्षत्रिय समाज की दशा बिगड़नी ही थी। जब क्षत्रिय समाज की दशा बिगड़ी तो संपूर्ण संसार की भी दशा बिगड़ गयी। क्षत्रिय समाज अपने मार्ग से भटका तो सारा जगत अपने मार्ग से भटक गया और पूरी की पूरी मानवता संतप्त, त्रस्त व पीड़ित हो गयी क्योंकि संपूर्ण मानवता का भाग्य क्षत्रिय समाज से बंधा हुआ है।

क्षत्रिय समाज तमोगुण से आक्रान्त होकर अपनी क्षात्र शक्ति को विस्मृत कर चुका था। तथा पथ विचलित, धर्म विमुख व कर्तव्यच्युत होकर किम्कर्तव्यविमूढ की स्थिति में दर-दर की ठोकरें खाता हुआ गरत में धंसता जा रहा था। ऐसी स्थिति में क्षत्रिय समाज का परित्राण करना आवश्यक हो गया था। जब संपूर्ण मानवता यानी संपूर्ण जगत का भाग्य क्षत्रिय समाज से बंधा हुआ है तो क्षत्रिय समाज का परित्राण करने में ही संपूर्ण जगत का परित्राण निहित था और समय की यही माँग थी। समय की इस माँग को पूरा करने के लिए जनमानस ही क्या, प्राणी मात्र की आवश्यकता बनकर पूज्य श्री तनसिंहजी को आना पड़ा।

क्षत्रियों का ईश्वर द्वारा निश्चित तय रास्ता है-

''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्'', उसको क्षत्रियों ने छोड़ दिया और गलत रास्ते को चुना, इसलिए दिशाहीन क्षत्रिय समाज का ध्रुवतारा बनकर, उनके प्रेरक, सम्बल और मार्गदर्शक के रूप में समाज के लोगों के मध्य अवतरित हुए और उन्होंने क्षत्रिय समाज के लिए अन्तर्मन से प्रार्थना की-''क्षत्रिय कुल में प्रभु जन्म दिया तो, क्षत्रिय के हित में जीवन बिताऊँ।''

पूज्य श्री तनसिंहजी खुद ने अपने आने के संकेत दिये हैं-मैं निर्झर हूँ यानी मैं शाश्वत हूँ, अविनाशी हूँ, पर्वत से बह गहरा नीचे तक आया हूँ यानी मैं असीम, अनन्त होकर भी साधारण आदमी जिस स्थिति पर है, उसी स्थिति पर अपनी लीला करने इस भू-धरा पर आया हूँ। अपने आने के कारण का संकेत देते हुए आगे कहा-''पगली धरती के आँचल को मैं तीर्थ बनाने आया हूँ'' यानि-

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।''

अर्थात्- जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने आपको साकाररूप से प्रकट करता हूँ। धरती पर पाप और अधर्म अधिक बढ गया इसलिए ''विनाशाय च दुष्कृताम्'' यानी दुष्टों का विनाश कर इस धरती को तीर्थ स्थल की तरह पवित्र और निर्मल बनाने आया हूँ। इसके अलावा अपने आने के कारण का और संकेत दिया है-

''गुमराह हठीलों के प्रांगण में मैं अलख जगाने आया हूँ।''

ऐसे ना समझों को जो बिना ध्येय भागे जा रहे हैं और बिना समझ के रूढिगत जीवन जी रहे हैं, उनको धर्म, संस्कृति और कर्तव्य का ज्ञान कराने, उन्हीं के प्रांगण में अलख जगाने आया हूँ। फिर एक और संकेत देते हुए पूज्य श्री ने कहा-

''हारे अर्जुन को कर्मयोग का पाठ पढाने आया हूँ।''

क्षत्रिय समाज ने बाहरी शत्रु पर तो हमेशा जीत हासिल की है, पर भीतरी शत्रु से परास्त हो गया। क्षत्रिय अपने अहंकारवश, मोहवश, निजी स्वार्थवश भीतरी शत्रु से हार गया और अकर्मण्यता व निष्क्रियता उनके जीवन पर छा गयी। ऐसी स्थिति में पूज्य श्री तनसिंहजी ''हारे अर्जुन'' को यानी क्षत्रिय समाज के लोगों को निष्काम कर्मयोग का पाठ पढाने हम लोगों के मध्य अवतरित हुए।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने क्षत्रिय समाज में सत्व गुण को पुनर्जीवित करने के लिए क्षत्रिय समाज को श्री क्षत्रिय युवक संघ के रूप में एक अनुपम व दिव्य तोहफा दिया है। श्री क्षत्रिय युवक संघ क्षत्रियों में क्षत्रियोचित गुणों व संस्कारों का निर्माण का कार्य करने में प्रयासरत है। यदि हमें समाज में जागृति लानी है, समाज के दृष्टिकोण और उसकी विचारधारा में परिवर्तन लाना है तो श्री क्षत्रिय युवक संघ को अपनाकर, श्री क्षत्रिय युवक संघ के मार्ग पर, पूज्य श्री तनसिंहजी के बताये रास्ते पर चलना होगा।

(क्रमशः)

पहली पीढ़ी अन्तःकरण की सृष्टि नहीं होती। वह बुद्धि और कार्यक्षमता की उपज होती है। सन्तान होने की वे लोग केवल इसलिए स्वीकृति करते हैं, कि वे हमारी बुद्धि और कार्यक्षमता के आगे पराजित हो जाते हैं। किन्तु अन्तःकरण की संतान का असहमत होने का कभी प्रश्न ही पैदा नहीं होता। पहली पीढी जब कभी असहमत हुई, उसने मेरे समूचे आधिपत्य का प्रतिकार किया और इसलिए उन पर बुद्धि और कार्यक्षमता की सत्ता पुनः स्थापित करना भी ठीक नहीं। वे लोग हीनवृत्ति और दुर्बल आत्माएँ होती हैं और इसीलिए अकेले तो क्या, मिलकर भी किसी उत्तरदायित्व को निभा नहीं सकते।

- पू. तनसिंहजी की डायरी से

गतांक से आगे

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

पृथ्वीराज चौहान – इतिहास की धुंध पर प्रकाश :

पृथ्वीराज चौहान का जन्मकाल भाग–1

रासो के संस्करणों में पृथ्वीराज के जन्म विषयी सत्यापन योग्य सूचना केवल बड़े संस्करणों में है। रासो कहता है कि हमारे महानायक का जन्म अनंद विक्रम सम्वत् 1115 (1058 ई.) वैशाख वदि तृतीया को हुआ। वार- गुरु, योग-सिद्य, नक्षत्र- चित्रा। जन्म समय सूर्योदय के 1 घड़ी, 30 पल और 3 अंश बाद का दिया है।

रासो की जानकारी के अनुसार बनी जन्मकुंडली में गुरु, शुक्र और बुध दसवें घर में हैं। चंद्र और मंगल पांचवें घर में हैं। राहु को ग्यारहवें घर में बताया है सो केतु को पांचवे में माना जा सकता है। सूर्य बाहरवें घर में है तो शनि आठवें में स्थित है।[1]

ऊपर दिया जन्म समय पृथ्वीराज के ज्ञात व सर्वमान्य इतिहास (12वीं सदी) से एक सदी हिल जाने से कई पाठकों को विस्मयकारी लगा होगा। यहाँ खेल रासो के ''अनंद'' विक्रम संवत का है। कुछ विद्वान मानते हैं कि ये पारम्परिक विक्रम संवत से भिन्न है। रासो की ऐतिहासिक योग्यता के श्री विष्णुलाल पांड्या[2] और श्री श्यामसुन्दरदास जैसे समर्थकों ने अनंद शब्द की अनोखी विवेचना कर बचाव किया कि ये संवत विक्रम से 91 वर्ष दूर है। किन्तु ऐसा मानने पर भी रासो की अधिकांश घटनाओं का समय ठीक नहीं होता। पृथ्वीराज का जन्म इस संशोधित से वैशाख 1206 वि.सं. यानी 1149 ई. में होता है। इस अनुसार तो उनके पिता सोमेश्वर का जन्म 1120 ई. के दशक के बाद संभव ही नहीं। पर तथ्य जब ये दिखाते हैं कि सोमेश्वर तो 1162 ई. तक ननिहाल में चौलुक्यों के युद्धरत युवा का अविवाहित अधिकारी थे तो हंसी रुकना संभव नहीं।[3] सोमेश्वर का जन्म अर्णोराज चौहान व चौलुक्य राजकुमारी कांचनदेवी के विवाह से था। यह विवाह 1135 ई. के अर्णोराज के राज्याभिषेक के कुछ वर्षों बाद यानी 1138-40 ई. में हुआ।[4] तो दस वर्ष से भी छोटे सोमेश्वर को 1149 ई. में पृथ्वीराज कैसे हो गए?

ज्योतिष जानने वाले मित्रों ने ध्यान दिया हो कि रासो के वाक्यानुसार पृथ्वीराज के जन्म पर शनि ग्रह गुरु से दो घर पीछे और राहु से तीन घर पीछे चल रहे थे। नवग्रहों में ये तीन सबसे धीमे चलने वाले हैं, वर्षों में जाकर भचक्र की एक से दूसरी राशि में ढुकते हैं। सो पंचांगों और भिन्न-भिन्न सैद्धांतिक गणनाओं के अन्तर को ध्यान में रखते हुए, सरल व दृढ पुष्टि के लिए हमने वैशाख 1206 वि.सं. पर इन्हीं तीन की स्थिति जानने का प्रयास किया। इसके लिए हमने नासा के जेट प्रोपल्शन लेब की गणनाओं पर आधारित स्विस एफेमेरिस (पंचांग का पाश्चात्य रूप) का उपयोग किया।[5] उस आधार पर वास्तविक ग्रह स्थिति इस प्रकार है :

शनि – 09 मिथुन 36

गुरु – 19 कर्क 30

राहु – 06 मेष 27

तो सिद्ध हुआ कि शनि यहाँ गुरु से दो नहीं अपितु एक राशि पीछे है और राहु से तो तीन राशि पीछे के बजाए दो राशि आगे है। अतएव रासो की सूचना 1206 वि.सं. यानी 1149 ई. की खगोलीय स्थिति के आसपास भी नहीं फटकती।

1. रासो वृहत संस्करण, आदि पर्व, छंद 705-710, 2. पृथ्वीराज रासो की प्रथम संरक्षा – विष्णुलाल पांड्या, 3. बिजोलिया शिलालेख, इंडियन एंटीक्वेरी खण्ड 26, पृ. 102-120, 4. हांसी शिलालेख, इंडियन एंटीक्वेरी खण्ड 41, पृ. 17-19 5. जेट प्रोपल्शन लेबोरेटरी डेवलमेंट एफेमेरिस

पृथ्वीराज चौहान के जन्मकाल पर अभी तक बुद्धिजीवी वर्ग एकमत नहीं हो सका है। रासो को परे रखें तो मुख्यधारा में प्रचलित एक मत सुविख्यात इतिहासकार श्री दशरथ शर्मा का है, जिन्होंने अजमेर नरेश का जन्म मई 1166 ई. में और तद्नुसार गर्भ प्रवेश 1165 ई. बताया है।

तो ये जानने का एक नया प्रयास करेंगे कि ये मत कितना सटीक है, यदि नहीं है तो कौनसा काल अधिक सटकी है।

लक्ष्य– पृथ्वीराज चौहान के जन्मकाल का एक-दो वर्ष के अंतराल तक निर्धारण करना।

सिद्धान्त वाक्य – पृथ्वीराज चौहान का वर्तमान में प्रचलित 25 वर्षीय (1166-1191) आयु भोग उनके जीवन के साथ ही उनसे पूर्व व बाद की घटनाओं को समेटने के लिए पर्याप्त नहीं और ऐतिहासिक घटनाओं के क्रमानुसार मेल नहीं खाता। अतएव उनका जन्म प्रचलित 1166 ई. से कुछ वर्ष पूर्व ही हुआ है।

स्पष्टीकरण: तथ्यों पर एक दृष्टि :

हमारे चौहान योद्धा के समकालीन ग्रन्थ पृथ्वीराज विजय में उनके जन्म का केवल मास व तिथि दिया गया है-ज्येष्ठ की द्वादशी। इस अधूरी जानकारी से हम बस ईस्वी संवत के मई माह पर आकर अटक जाते हैं।

पर पृथ्वीराज के गर्भ प्रवेश पर इस ग्रंथ में अधिक प्रकाश डाला गया है। नव ग्रहों की भचक्र में तब की स्थिति पर विस्तार से बताते श्लोकों में कुछ भाग तो काल के तांडव को नहीं सह सके, पर जोनराज की उन पर लिखी टीका बच गई।

टीकानुसार तब 2 ग्रह स्वराशि में और 5 अपनी उच्च राशि में थे।[1] श्री दशरथ शर्मा ने जन्म वर्ष निकालने के लिए मूल रूप से इसी जानकारी का प्रयोग किया है।

आगे पृथ्वीराज विजय और शिलालेखों के आधार पर कुछ घटनाओं व तथ्यों की कालक्रम से एक सूची दी गयी है। ये जन्म वर्ष के लिए हमारे आंकलन में उपयोग होगी। पर उससे पहले 12वीं सदी अजमेर के चौहानों की संक्षिप्त वंशावली देखना आवश्यक है।

पृथ्वीराज तृतीय के समीप अजमेर चौहानों की वंशावली

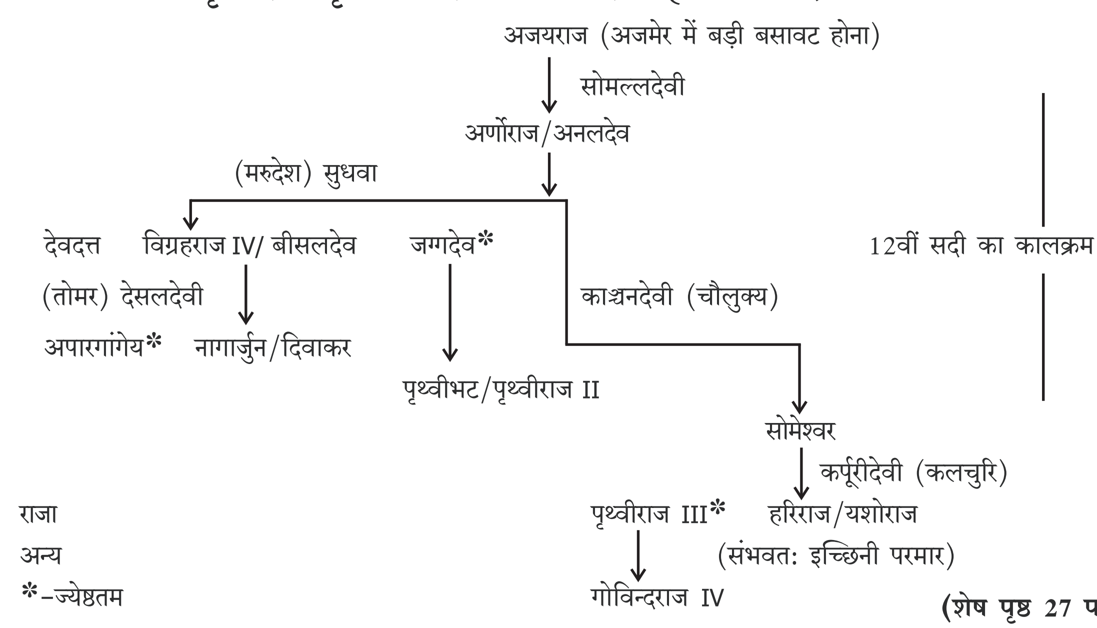

(शेष पृष्ठ 27 पर)

1. पृथ्वीराजविजय, सर्ग-7, श्लोक23-27,

गतांक से आगे

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

– स्वामी जगदात्मानन्द

कठिन परिस्थितियों का खरल :

कठिनाइयाँ, दु:ख-कष्ट तथा असहायता की दशा मनुष्य को जिस चिन्ता एवं विषाद में तपाती है, उसका वर्णन किसी भाषा में नहीं किया जा सकता। इस प्रसंग में हम कुछ वास्तविक घटनाओं का वर्णन करते हैं –

अपने जीवन के दु:ख-दर्द को सह पाने में अक्षम तथा अति विचलित एक महिला ने कहा, 'बचपन में ही माँ की मृत्यु हो जाने से मैं अनाथ पली और बड़ी हुई। दुर्भाग्यपूर्ण मेरा विवाह एक निर्दयी व्यक्ति के साथ हो गया, जो शराबी तथा दुश्चरित्र था। अब मैं दो बचों की माँ हूँ। बड़ा नौ और छोटा चार साल का है। मेरे दु:ख का कोई अन्त नहीं। एक ओर मैं पति के संरक्षण से वंचित हूँ, तो दूसरी ओर अपने सभी सगे-सम्बन्धियों से भी दूर हूँ। कोई भी ऐसा नहीं है, जिससे मैं या मेरे बच्चे अपने दिल की बातें कह सकें। हमने इस मधुर आशा में अनेकों वर्ष बिता दिए कि ईश्वर हमारा साथ नहीं छोड़ेंगे, पर वह आशा भी अब धीरे-धीरे जा चुकी है। मेरे पति अक्सर कहते हैं, 'भगवान के लिए मेरा पिंड छोड़ दो। तुम्हारे रोने-धोने पर कोई ध्यान नहीं देगा।' वे पहले इतने क्रूर नहीं थे। पर अब तो उन्होंने मानो मुझे नरक में ही ढकेल दिया है। वे मुझे दैहिक और मानसिक रूप से मर्मभेदी पीड़ा देते हैं। इधर उनकी लम्पटता बढ़ गयी है। मेरी सारी आशाएँ भग्न हो चुकी हैं। मेरी अब और जीने की इच्छा नहीं है। यहाँ तक कि बच्चों की चिन्ता भी मुझे आत्महत्या के विचार से रोक नहीं पाती।' क्या इस अभागिनी नारी के लिए कोई उपाय है?

एक महात्मा ने उसे ढाढ़स बँधाते हुए कहा- 'निराश मत हो। ऐसी बात नहीं कि ईश्वर तुम्हारे दु:ख-कष्टों से अनजान हैं। उनके प्रति विश्वास मत खोना। अब तक शायद तुम समझ गयी होगी कि संसार दु:खमय है। यह ऐसे लोगों से भरा है, जो ऊपर से तो ईमानदार तथा उदार हैं, परन्तु दिल से घोर स्वार्थी हैं। और यह कभी मत सोचो कि ईश्वर तुम्हारी प्रार्थना नहीं सुनते। तुम उनसे दिन में जो दो बार प्रार्थना करती हो, उसमें और भी उत्साह तथा भाव लाकर अश्रुपूर्ण प्रार्थना करती रहो। तुम भले ही तत्काल इसके फल का अनुभव न करो, परन्तु आगे चलकर इसका फल अवश्यम्भावी है। हर कोई तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। वस्तुत: केवल भगवान ही मनुष्यों को इस जीवन के दलदल से निकाल सकते हैं। अतीत को भुला दो। क्या तुम दो दिन पूर्व किए गए भोजन के स्मरण का प्रयास करती हो? अतीत की घटनाएँ तुम्हें अब भी क्यों परेशान करती है? बीता हुआ कल फिर वापस नहीं आता। अब से सचेत रहो और सावधानीपूर्वक अगला कदम बढ़ाओ। अपने बच्चों को प्रार्थना और उसके महत्त्व के बारे में बताओ। अपने पति के मंगल हेतु भी निष्ठापूर्वक प्रार्थना करो। इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा। इससे तुम्हारे सौभाग्य का उदय होगा। निष्ठापूर्वक अपनी साधना करो। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर प्रभु से प्रार्थना करो। दिन भर का कार्य समाप्त करने के बाद भी पूजाघर में जाकर प्रभु को प्रणाम करके कातर प्रार्थना करो। यदि तुम दु:ख से अभिभूत हो, तो अपने भय भाव के अनुसार उनसे प्रार्थना करो। धीरज रखो। जल्दबाजी में उनके बारे में कोई धारणा मत बना लो। जीवन बहुमूल्य है। इस मूल्यवान जीवन को पाकर इसके लक्ष्य को मत भूलो।

'कोई कठिनाई भी अकारण नहीं आती। ईश्वर कोई मजा लेने हेतु लोगों को परेशानी के कारागार में नहीं डालते। वे अनासक्त हैं और साक्षी के रूपमें सब कुछ देखते रहते हैं। जो सच्चे हृदय से सहायता के लिये आकुल होगा, उसे सही समय पर निश्चय ही मदद मिलेगी। ईश्वर में पूरा विश्वास रखना होगा। कर्म या भाग्य के प्रभाव को नष्ट करने हेतु ईश्वर से अनुनय-विनय करना होगा। मानव-जीवन मेघाच्छन्न आकाश के समान है, जिसमें चारों ओर धुएँ तथा कुहरे के घने बादल

मँडराते रहते हैं। इस संसार में कोई भी सच्चा सुख नहीं पा सकता। ऐसी सलाह देने पर लोग विश्वास नहीं करते। पर उन्हें स्वयं के अनुभवों से जीवन के बारे में सीखना है। जागतिक जीवन की तुच्छता के बारे में दृढ़ विश्वास हो जाने के बाद हम इसके प्रलोभन से मुक्त हो सकते हैं।

'जीवन की कठिनाइयों की गाँठ को खोलना आसान नहीं है। केवल प्रार्थना और भगवन्नाम के जप से ही क्रमश: यह गाँठ ढीली हो सकती है।आध्यात्मिक जीवन में सफलता का यही सच्चा रहस्य है। यह समयसाध्य है। तुमने धैर्य के साथ कष्ट सहते हुए इतना लम्बा काल बिता दिया है। अब शान्ति पाने के आध्यात्मिक समाधान को भी आजमा कर देखो। जैसे भोजन करने के घण्टों बाद तक उसके स्वाद की डकार आती रहती है उसी तरह सम्भव है कि कुछ समय तक तुम्हें दु:खद अतीत की स्मृतियाँ परेशान करती रहें। पर इससे निराश मत होना। आने वाले दिन अच्छे होंगे।'

एक अन्य घटना :

एक 35 वर्ष की महिला थी।रात में सबके सो जाने पर तूफान आया और उसके घर के सामने का पेड़ उखड़ गया। पति, पत्नी तथा बच्चे निद्रामग्न थे। सब कुछ बाल-बाल गच गए, परन्तु वह महिला, जो पाँच बच्चों की माँ थी, पाँव पर पेड़ की एक डाल गिर जाने से घायल हो गयी। उसके कमर के नीचे के हिस्से में लकवा मार गया। सारी चिकित्सा व्यर्थ सिद्ध हुई। यह महिला उठ पाने में भी असमर्थ हो गयी। अब वह पूरी तौर से दूसरों पर निर्भर थी। उसी के शब्दों में, 'गरदन के नीचे की पीड़ा असह्य है। मेरे दुर्भाग्य का कोई अन्त नहीं। हाल ही में बुखार आ जाने से मेरी हालत और भी बदतर हो गयी। मैं पूर्णतया टूट चुकी हूँ। गरीबी की आग भी हमें झुलसा रही है। मेरी एकमात्र प्रार्थना है कि मुझे मरने दिया जाए। जीने की अब मेरी कोई इच्छा नहीं है।

'मेरी बड़ी बहन ने पूजा-अनुष्ठान तथा तीर्थयात्रा की। एक अन्य बहन ने बड़ों की सेवा करके पुण्य कमाया। परन्तु तीर्थ यात्रा की बात तो जाने ही दीजिए, मुझे अपने पिता की सेवा तक का मौका नहीं मिल सका। पैरों की पूरी शक्ति चले जाने से मैं अपने पति की भी कोई सेवा नहीं कर सकती। इन कठिनाइयों के बीच अब मुझे जिन्दा ही नहीं रहना चाहिए।'

उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि जीवन इतना अधिक कठोर हो सकता था। उसके कष्टों के प्रत्यक्षदर्शी उसके रिश्तेदारों ने कहा, 'पिछले छ: वर्षों से वह इस जगह से हिली तक नहीं है। वह करवट भी नहीं बदल सकती। वह जहाँ-जैसी पड़ी है, उसे वहीं-वैसे ही पड़े रहना पड़ता है। उसके पीठ में बड़े-बड़े घाव हो गए हैं। पूरे शरीर में पीड़ा होती है। उसके पति की आर्थिक दशा और भी बिगड़ गयी है। उसकी हालत इतनी खराब है कि वे लोग बच्चों को पुरस्कार के रूप में स्कूल से मिली छोटी-मोटी चीजें भी बेचने को बाध्य हैं। यह तो एक चमत्कार-सा ही है कि इस भयानक कठिनाइयों में भी उसका पति यहाँ से भागने का कोई प्रयास नहीं करता और दिन-रात कठोर मेहनत करके बड़ी मुश्किल से आजीविका चला रहा है। अब तक काफी हानि हो चुकी है। हम लोग यथाशक्ति उनकी सहायता कर रहे हैं, ताकि हालत और बदतर न हो जाए। पर उनकी आवश्यकताओं की तुलना में हमारी सहायता कुछ भी नहीं है। यह स्पष्ट ही है कि मानवीय सहायता की सदा अपनी सीमा होती है।'

ऐसी त्रासदियों से हम स्वयं को कैसे बचा सकते हैं? एक उन्नत साधक का कहना है-'जीवन-चक्र की गति के दौरान सुख और दुख एक-दूसरे के पीछे आते रहते हैं। यदि लगातार कठिनाइयाँ आएँ, तो भी हिम्मत मत हारो। भक्ति तथा निष्ठा के साथ भगवन्नाम का जप करो। बीती बातों को याद करके खेद मत करो। मत भूलों कि प्रभु अपने शरण में आए हुए लोगों का परित्याग नहीं करते। चिन्तित मत हो; धैर्य रखो। वे सबकी रक्षा करें, भय की कोई बात नहीं।' यह आश्वासन पूर्णत: सत्य है। हम भयभीत क्यों हो? हमारे समस्त दु:खों तथा चिन्ताओं का कोई-न-कोई कारण है। और इसी प्रकार हमारे भले कर्म भी अच्छे फल अवश्य लाएँगे। एक अटल नियम के अनुसार प्रत्येक कर्म का फल

अवश्यम्भावी है। हमें सोचना चाहिए कि ईश्वर की इच्छा से ही हमारे जीवन में सारे दु:ख आते हैं, ताकि हम उनकी ओर अग्रसर हो सकें। हमें साहस तथा दृढ़ संकल्प के साथ जीवन में आगे बढ़ना होगा। जैसे सोने को तपाकर उसे विशुद्ध बनाया जाता है, वैसे ही कठिनाइयों से गुजरकर जीवन को सार्थकता प्राप्त होती है।

'भय की कोई बात नहीं। सभी दु:ख-कष्टों का एक ही स्थायी समाधान है और वह यह, कि हम ईश्वर के चरणों में आत्मसमर्पण कर दें। दु:ख-दर्द से चीख रहे बच्चे के क्रन्दन से हर माँ द्रवित हो जाती है। माँ स्वभाव से ही दयालु होती है। ईश्वर भी माँ के समान है। हमें उनके नाम का जप करते रहना चाहिए। वे सब कुछ जानते हैं। निरंतर प्रार्थना ही चिन्ता से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है। भगवान हर भक्त की जरूरतों को जानते हैं। भावपूर्ण प्रार्थना, पवित्र विचार, स्वाध्याय तथा कर्म-ये ही मानव-हित को सुनिश्चित करने के साधन हैं।'

यह आश्वासन एक अनुभूति सम्पन्न महापुरुष ने दिया था। उन्होंने सैकड़ों युवकों में आशा और उत्साह का संचार किया था। वे लोगों की असाध्य लगने वाली कठिनाइयों तथा दु:ख-कष्टों को देखकर बड़ी सहानुभूति-पूर्वक ईश्वर से कातर प्रार्थना करते थे। अपने निजी अनुभव के आधार पर उनका दृढ़ विश्वास था कि प्रार्थना से कायाकल्प हो सकता है। काफी सोच-विचार के बाद ही वे कुछ बोलते थे। उनके स्वभाव में स्वार्थ या अहं का लेशमात्र न था।

नास्तिक, तथाकथित युक्तिवादी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले लोगों को शायद ऐसे विचार अच्छे न लगें, पर जीवनकी कठिनाइयों से पीड़ित लोगों के लिए उनके पास दिलासे का कोई शब्द नहीं होता। केवल सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक सुधार से मानवीय पीड़ा दूर नहीं हो सकती।

धन से सुख-शान्ति नहीं मिलती :

जीवन में सुख-शान्ति केवल धन पर निर्भर नहीं करती। इस बात को कई उदाहरणों से प्रमाणित किया जा सकता है।

समाज के एक गणमान्य व्यक्ति कई सामाजिक संस्थाओं के पदाधिकारी हैं। उन्होंने जन-कल्याण के कार्य किए हैं और अपने अंचल के अनेक परिवारों को लाभ पहुँचाया है। उन्होंने एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लिया था। वे एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति हैं। उन्होंने कठोर परिश्रम से अपने परिवार की स्थिति में सुधार लाया। परन्तु अभी हाल ही में एक भाई तथा चार पुत्र-पुत्रियों से युक्त उनके परिवार में बँटवारा हो गया है।

आज वे वयोज्येष्ठ सज्जन अपनी पत्नी, बच्चों तथा घर से दूर निवास करते हैं। वे तीव्र मानसिक तनाव तथा क्षोभ से पीड़ित हैं। आर्थिक दृष्टि से समृद्ध होने के बावजूद, केवल वे ही नहीं, अपितु उनके घर का हर सदस्य किसी-न-किसी मानसिक पीड़ा से त्रस्त है। आज पिता और उनकी संतानें मुकदमेबाजी में फँसकर अदालतों के चक्कर लगा रही हैं। ऐसा क्यों हुआ? ऐसा क्यों होता है? क्या उनके भाग्य में केवल दु:ख भोगना ही बदा है? इन वृद्ध सज्जन का उद्धार कैसे हो? उनके मन की प्रसन्नता कैसे लौट सकती है? धन यदि सुख या शान्ति न ला सके, तो फिर उसकी उपयोगिता ही क्या?

कानून के एक विख्यात प्राध्यापक का एक पुत्र है। आठ या नौ वर्ष की आयु में वह बालक एक दुकान से काँच का एक टुकड़ा ले आया। बच्चे की माँ कहती है कि उसी दिन से उनका दुर्भाग्य शुरू हो गया। तब से लेकर पिछले छह या सात वर्षों तक उस बालक की मानसिक हालत स्वस्थ नहीं थी। कोई भी यह नहीं जान पाता कि वह तीन अल्सेशियन कुत्तों द्वारा सुरक्षित घरों से घड़ी या टेपरिकार्डर कैसे उठा लाता है। इससे भी विचित्र बात यह है कि उसे दूसरों के घरों के आसपास मलत्याग करने की बुरी आदत पड़ गयी। उसमें एक और भी विचित्र आदत है। वह किसी के भी घर का दरवाजा खटखटाता है और घर पर किसी के मौजूद होने पर वह कहने लगता है, 'क्षमा कीजिए, मैं यहाँ गलती से आ गया।' पर घर में किसी के न होने पर वह वहाँ से मनपसन्द चीजें उठा लेता है। वह घरों में घुसता कैसे है? वह खिड़कियों की छड़ों को आसानी से

मरोड़ डालता है। चुराई गई चीजों का वह क्या करता है? वह उन्हें कहीं छिपा देता है। वह अपने माता-पिता के प्रति भी अपशब्दों का प्रयोग करता है। एक डायरी में वह अपने नित्य किए गए कार्यों को लिखकर रखता है। अपनी कक्षा की एक लड़की से उसने पत्राचार भी आरम्भ किया। उसे उस लड़की का विश्वास भी हासिल हो गया है। उसे सतत धूम्रपान करने की लत लग गयी है। एक मनो-चिकित्सक ने उसे सोशियोपैथ का रोगी बताया। मनो-चिकित्सक ने उसके माता-पिता को आश्वस्त किया कि प्रेम और धैर्यपूर्वक चिकित्सा करने पर उनका पुत्र कुछ वर्षों में ठीक हो जाएगा। कुछ काल बाद उसका व्यवहार असह्य हो जाने पर उसके माता-पिता ने उसे मनो-चिकित्सालय में भर्ती करा दिया। वहाँ से उसने भाग निकलने का निष्फल प्रयास किया। यहाँ तक कि एक बार उसने आत्महत्या की भी चेष्टा की। आजकल वह अपने माता-पिता को धमकी देकर कहता है, 'परीक्षा-फल घोषित हो जाने दीजिए। मैं आप लोगों को मार डालूँगा।' विशेषज्ञ कहते हैं कि प्रेम और स्नेह से इस बालक का उपचार होना चाहिए। परन्तु यह है कितना कठिन!

उस बाल की दादी कहती है, 'हाय, ये दुःखदायी बच्चे हमारे पूर्वजन्म के कुकर्मों का फल है। ये बच्चे हमारी नियति हैं। कोई क्या कर सकता है?' इस बालक के पिता युक्तिवादी हैं और वे अपने पुत्र के अरोग्य हेतु आधुनिक चिकित्सा में विश्वास रखते हैं। वे भगवान में या प्रार्थना में विश्वास नहीं करते। उसकी माँ अब भी यह निश्चित नहीं कर सकी है कि वह किस देवता की मनौती माने। यह बालक समूचे परिवार के लिए एक सिरदर्द बना हुआ है।

क्या वे इस कष्ट से उबर नहीं सकते? ऐसी बात नहीं कि इस समस्या का कोई हल ही न हो। जहाँ चाह, वहाँ राह। **(क्रमशः)**

श्री क्षत्रिय युवक संघ की हीरक जयन्ती पर

– गुमानसिंह धामोरा

ठुकरेस खोई ठाकरां, कर अनाफ उद् फैल।
इज्जत ढ़ाबो महामना, होड़ होड़ ना गैल।।

सोच'र चालो ठाकरां, टेम नहीं अनुकूल।
जती गुदड़ी महामना, पग पसार रो सूल।।

आज कौम भेळी हुई, हरख मान सनमान।
जुग जुगारा बाद देख, गुमान करै गुमान।।

आज उड़ी कै ठाकरां, कौम देय आवाज।
इक नेजै नीचै रहो, कौम करै ज्यूं नाज।।

लाखों योनी ठाकरां, जांमै थांकी एक।
सिरमोर की-ही ईशरो, आज'न गिणिजै नेक।।

ठसक छोड़ो ठाकरां, आगै हुया हरान।
चली पावली बीं भगत, आज'न चलै गुमान।।

संघ संग चालो ठाकरां, एकल पड़ै ना पार।
रीत पुराणी छोड़ द्यो, नुई रीत कर त्यार।।

उच्च नेतिकता ठाकरां, खोसो'न कोई हक्क।
निडर होय भेळा रहो, देख'र दूजा धक्क।।

टांग खिंचाई ठाकरां, इक दूजै की कीन्ह।
औरां लाट्यो फायदो, अब तो गळती चीन्ह।।

धीरज धारो ठाकरां, इक झंडै नीचै आय।
कळजुग जरूरी संघ शक्ति, आदर देय बुलाय।।

सिर कटाण का दिन गया, सिर गिणाण का आज।
आवो सै भेळा हुआं, सहर्ष कौम कै काज।।

मोड़ै चेत्या ठाकरां, हाथां निकळी लाव।
लारली चूक भूलकर, सांझ पड़ी घर आव।।

लीकां छोड़ी ठाकरां, कर्‌यो घणो बिसराम।
उठ कर हेलो मारद्यो, अब आराम हराम।।

* * *

गतांक से आगे

यदुवंशी करौली का इतिहास

– राव शिवराजपालसिंह इनायती

''महाराजा गोपालसिंह का राज्याभिषेक करौली के राज महलों में ईसवी सन् 1724 तद्नुसार संवत 1781 में हुआ। यह वीर, धीर, बुद्धिमान, सर्वगुण संपन्न शासक थे। यदुवंश के मथुरा से बयाना आने के बाद से सबसे अधिक प्रभावशाली राजाओं में विजयपाल, तिमन पाल, कुंवर पाल, अर्जुन देव और गोपाल दास के बाद इन्हीं का नाम आता है। अपने शासनकाल में इन्होंने नरवर रियासत का काम संभाल रहे दो ब्राह्मण खंडेराय और नवलसिंह को अपना प्रधान बनाया, इन दोनों ने महाराजा गोपालसिंह को अपनी बुद्धिमानी और कूटनीति से शासन चलाने में ऐसा सहयोग दिया कि राजा गोपालसिंह का शासनकाल बिना किसी अंदरूनी बगावतों तथा बाहरी खतरे के निर्विघ्न रूप से संचालित हुआ। मराठा शक्ति से भी इन्हीं दोनों ने सामंजस्य बनाए रखा और कोई सीधा टकराव नहीं होने दिया। अंदरूनी समस्याओं के नहीं होने के चलते गोपालसिंह जी के शासनकाल में करौली रियासत की सीमाएँ ग्वालियर से पाँच कोस पहले तक तथा चंबल के दक्षिण में आज के कोटा राज के मांगरोल तथा मध्यप्रदेश के विजयपुर तक पहुँच गई थीं। इनके शासनकाल में करौली राज में कुल 697 गाँव आते थे। उस समय करौली राज के परगने और उसमें आए गाँवों का विवरण इस प्रकार से है :

करौली 44 गाँव, कुंडगाँव और जीरोता 91 गाँव, मासलपुर 58, बहरगढ़ 17, उतगिर 62, मंडरायल 48, कोटडी के गाँव 52, कोलारी 33, खरहा 8, चम्बल पार मांगरोल 31, सबलगढ़ 171, विजयपुर 82, कुल 697 गाँव।

ईस्वी सन् 1753 में महाराजा गोपालसिंह तत्कालीन मुगल बादशाह मोहम्मद शाह के बुलावे पर दिल्ली गए जहाँ उसने उन्हें माही मरातिब सम्मान से नवाजा। इसके कुछ समय बाद मुहम्मद शाह की मराठों के साथ कुछ शर्तों पर संधि हुई थी। उनमें से एक शर्त के अनुसार राजा गोपाल सिंह द्वारा जीता हुआ सबलगढ़ का क्षेत्र लौटाना था, लेकिन इस बुद्धिमान शासक ने उस क्षेत्र को नहीं लौटा कर उसके एवज में 13,000 सालाना का खिराज देना मंजूर किया जो उसने अगले 2 वर्ष तक दिया। भरतपुर के राजा सूरजमल के साथ टकराव टालने हेतु सरमथुरा का भाग समझौते स्वरूप देकर विरोध सदा के लिए समाप्त कर दिया।

महाराजा गोपालसिंह की एक शादी जयपुर के मिर्जा राजा सवाई जयसिंह की बहन से हुई थी, इस संबंध ने जयपुर एवं करौली रियासत के संबंध न केवल प्रगाढ किए बल्कि इस शासक को राजपूताने की राजनीति में मिर्जा राजा जयसिंह के साथ प्रभावी भूमिका निभाने का भी अवसर दिया। यह समय राजपूताने में बड़ी उथल-पुथल का था। मराठा शक्ति का उद्भव हो रहा था तथा वे चौथ वसूली के लिए राजपूताने की विभिन्न रियासतों पर लगातार आक्रमण कर रहे थे। सभी राजा उनकी इस चौथ वसूली से परेशान थे। जयपुर के शासक मिर्जा राजा जयसिंह की पहल पर राजपूताने के लगभग सभी राजाओं ने मराठों के विरुद्ध एक संघ शक्ति तैयार करने के लिए मेवाड़ के हूरडा में एक सम्मेलन आयोजित किया, जिसकी उदयपुर के महाराणा ने अध्यक्षता की और राजा गोपालसिंह को मराठों के विरुद्ध सैन्य संचालन के लिए विशेष रूप से नेतृत्व दिया। इस सम्मेलन में जयपुर और मेवाड़ के अतिरिक्त जोधपुर, बीकानेर, बूंदी, किशनगढ़, शाहपुरा और नागौर आदि के सभी राजा एक जाजम पर इकट्ठे हुए और एक समझौते पर दस्तखत हुए। इस समझौते का मजमून इस प्रकार से है –

''सीरदारां रो लिखतरो।

स्वस्ति श्री सारा सिरदार भेला होय या सलाह ठहरावी, सो ईना बातां मांहे तफावत ना होय। संवत् 1791 सावन बदी 13 मुकाम ग्राम हुरडे।

वीगत :

1. सारां री एक बात, भलाही बुराही मांहे सारा तफावत न करे, जणीरा सुह सपत कीया, धरम-करत ती रेवे, मुख सारां री लाज गाल एक जणी सारी बात।

1. हरामखोर कोई कणीरो राखवा पावे नहीं।

1. बाद बरसात काम उपजियाँ रामपुरे सारा सिरदार जमीत सुदी भेला व्हे, कोई सरीर रे सबब न आवे तो डील री बदली कुंवर तथा भाई आवे।

1. जणी कुमरा लोग मांहे चुक बांक थे सीरदार चुकावै, पण और दखल नी करे।

1. काम नवो उपजे, तो सारा भेला होय चुकावे- सं. 1791 वर्षे।''

यह अहदनामा बाद में राजाओं के आपसी विश्वास की कमी के चलते विफल हो गया और सभी राजा मराठों के विरुद्ध सामूहिक शक्ति की जगह एकल सामना कर प्रताड़ित होते रहे। करौली के राजा की मुख्य भूमिका से नाराज होकर मराठों ने सबसे पहले अपने पड़ोसी राज्य करौली पर आक्रमण कर दिया, लेकिन महाराजा गोपालसिंह ने बहादुरी से ना केवल उस आक्रमण को विफल किया बल्कि उनके सेनापति राउ जी सिंधिया (रूप जी) को करौली के पास रामपुर बरखेड़ा गाँव के पास मार गिराया जिसके फलस्वरूप मराठों को वापस लौटना पड़ा। ईस्वी सन् 1741 में जब मराठों ने जयपुर पर हमला किया उस समय भी गोपालसिंह अपनी कुमुक के साथ जयपुर की मदद को पहुँचे। बीकानेर की तवारीख और वीर विनोद के अनुसार अप्रेल 1740 में मारवाड़ के राजा अभयसिंह द्वारा बीकानेर पर हमला करने के समय नागौर के राजा बख्तसिंह ने बीकानेर के पक्ष में मिर्जा राजा सवाई जयसिंह से सहायता की गुहार लगाई। जयसिंह ने तुरन्त करौली के राजा गोपाल सिंह तथा उदयपुर महाराणा के प्रतिनिधि सलूंबर के रावत केसरीसिंह चूंडावत सहित जयपुर, मेवाड़ और करौली की संयुक्त सेनाओं के साथ जोधपुर घेरने के लिए मंडोर में जाकर पड़ाव डाल दिया। इससे परेशान होकर अभयसिंह ने कुछ इतिहासकारों के अनुसार बीस लाख रुपए देकर पीछा छुड़ाया।

मिर्जा राजा सवाई जयसिंह द्वारा सन् 1734 में जयपुर में किए गए अश्वमेध यज्ञ में भी राजा गोपालसिंह विशेष आमंत्रित थे। राजा गोपालसिंह के शासनकाल को करौली का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है। करौली शहर को वर्तमान स्वरूप इसी राजा ने दिया। शहर के चारों ओर लाल पत्थरों का मजबूत और ऊँचा परकोटा बनवाया जिसमें छह बड़े दरवाजे और बारह खिड़कियाँ हैं। राजमहलों में दीवाने आम, गोपाल मंदिर (दीवाने खास/खास इजलास), त्रिपोलिया और नगार खाना भी बनवाया। अर्जुन देव द्वारा बनवाए कल्याण राय जी के मंदिर को वर्तमान स्वरूप देने का श्रेय भी राजा गोपालसिंह को जाता है। गोपाल मंदिर को गुलकारी/चित्रकारी से सजाने के लिए आगरा से विशेष चितेरे बुलवाए, इसके विशालकाय खंभों, दीवारों एवं छत पर की गई चित्रकारी अनुपम है और आज भी दर्शनीय है। गोपाल मंदिर के निर्माण से जुड़ी एक रोचक घटना भी उल्लेखनीय है। जब इसका निर्माण और साज-सज्जा हुई उस समय किसी ने दिल्ली में मुगल बादशाह को चुगली की कि करौली के राजा ने लाल किले की तर्ज पर दीवानेखास बनवाया है। मुगल बादशाह ने इस पर अपने कुछ मुस्लिम मनसबदारों को करौली जाँच के लिए भेजा। राजा को जैसे ही यह खबर लगी उन्होंने उसके बाहर गोपाल मंदिर नाम चस्पा करवा दिया। जाँच दल की विशेष खातिर तवज्जो की गई और कुछ ले देकर उनको विदा किया गया जिन्होंने जाकर बादशाह को बताया कि वहाँ दीवाने खास नहीं गोपाल मंदिर बना है।

एक और बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य जो इनके समय में हुआ वह भगवान मदन मोहन के विग्रह का करौली पदार्पण था। महाराजा गोपालसिंह बहुत बड़े कृष्ण भक्त थे, जयपुर आने-जाने की वजह से कृष्ण के पड़पोते वज्रनाभ द्वारा बनवाई हुई त्रिमूर्ति गोविंद देव जी, गोपीनाथ जी और मदनमोहन जी के दर्शन किया करते थे। एक रात स्वप्न में राजा गोपालदास जी को भास हुआ कि मदनमोहन जी कह रहे हैं कि राजा मुझे करौली तेरे साथ जाना है। अगले दिन प्रात: राजा ने अपने स्वप्न को सवाई जयसिंह को सुनाया इस पर तीनों मूर्तियाँ एक जगह रखवा दी गई और गोपालसिंह को आँखों पर पट्टी बांधकर वहाँ ले जाया गया। उनसे कहा गया कि अगर आपका स्वप्न सच्चा है तो आप मदनमोहन जी की मूर्ति को पहचान लीजिए, आप यदि सही मूर्ति को पहचान लेंगे तो आप उसे ले जा सकते हैं। इतिहास के अनुसार राजा ने मदनमोहन जी से मन ही मन अरदास की कि मैं तो तेरे स्वप्न का ही पालन कर रहा हूँ, सच्चा या झूठा साबित करना तेरे हाथ है। प्रार्थना के बाद गोपालसिंह ने जिस मूर्ति को छुआ, वही मदनमोहन जी की मूर्ति निकली। बड़े गाजे-बाजे के साथ राजा स्वयं मूर्ति को करौली तक पाँव पयादे साथ चलकर लेकर आए। जयपुर

(शेष पृष्ठ 34 पर)

विचार-सरिता (सप्रति लहरी)

– विचारक

ज्ञानी की जीवनमुक्त स्थिति आत्मानंद की स्थिति है। ज्ञानोपरान्त जब तक प्रारब्धाधीन देह है तब तक भोजन भिक्षादि बाह्य क्रिया तो प्रतीयमान होती है पर उसकी पूर्ति अथवा अभाव में किसी प्रकार का हर्ष या शोक नहीं होता। जीवनमुक्ति का फल विदेहमुक्ति कही गई है। क्योंकि जब तक जीवन है तब तक शुष्क तृणवत कोई न कोई क्रिया देखी जा सकती है परन्तु जिस क्षण प्रारब्ध के आधीन देह का परित्याग (क्षय) होता है उसी क्षण जीवन-मुक्ति की अन्तिम परिणिति विदेहमुक्ति में समाहित हो जाती है।

विदेहमुक्ति का सीधा सादा अर्थ यही कहा गया है कि सदैव के लिए देह से मुक्ति का हो जाना अर्थात् पुनर्जन्म का अभाव। आत्मा नित्यमुक्त है। अविद्या से बन्ध प्रतीत होता है और जिस काल में ज्ञान होता है उसी काल में अविद्याकृत बन्ध-भ्रम नष्ट हो जाता है। शरीर सहित को बन्ध-भ्रम का अभाव ही जीवनमुक्ति कही गई है और भविष्य में सदैव के लिये देह से मुक्ति को विदेह मुक्ति कही गई है। ज्ञानी के शरीर-त्याग में काल विशेष की आवश्यकता नहीं। उत्तरायण में अथवा दक्षिणायन में शरीर-पात हो अथवा दिन में या रात्रि में, चाहे शुक्ल पक्ष हो या कृष्णपक्ष हो, ज्ञानी के लिए काल विशेष कोई महत्त्व नहीं रखता। ज्ञानी का शरीर चाहे काशी में छूटे अथवा किसी मलिन स्थान में छूटे। महल में शरीर छूटे या निरंजन जंगल में छूटे, इसका ज्ञानी के लिए कोई महत्त्व नहीं रखता। गौ के गले में पड़ी पुष्पहार की माला जंगल में घास चरते समय किस स्थान पर टूट कर गिए जाए, इसका महत्त्व गौ को कभी नहीं होता। वह गौमाता तो जिसको अड़चन मान रही थी उससे जब भी पिण्ड छूटा वह उसके लिए मंगलकारी ही था। इसी प्रकार ज्ञानी का देहपात भी देश-काल से सर्वथा जुदा ही है।

ज्ञानी प्राणान्त के समय चाहे निरोग हो आसन विशेष से बैठा हो, चाहे रोग से पीड़ित होकर पृथ्वी पर लोट पोट हो रहा हो, चाहे होश में हो अथवा बेहोशी में हो, उसके पास भ्रान्ति सर्वथा ही नहीं फटकती। ऐसे ही सावधान रहकर ब्रह्मचिन्तन करते हुए का अथवा रोग से व्याकुल हाहाकार शब्द पुकारते का देहपात होवे। ज्ञानी सर्वथा मुक्त है। इस प्रकार से ज्ञानी को विदेह मोक्ष में देश, काल, आसनादि की अपेक्षा नहीं। ज्ञानी प्रारब्धान्त में जब देह को त्यागता है तब लेशाविद्या शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती है और ज्ञानी आभास-रूप इस प्रपञ्च को भी त्याग देता है।

जैसे सरिता बहती हुई जाकर समुद्र में मिलती है तब अपने विशेष नाम व रूप को पूर्णतया त्यागकर समुद्र-रूप हो जाती है, वैसे ही विशेष-चैतन्य (चिदाभास) अपने सहित स्थूल-सूक्ष्म-कारण प्रपञ्च का बाध करता हुआ अर्थात् तीनों प्रपञ्चों को मूल अविद्या में और जीवभाव को शुद्ध साक्षी स्वरूप में मिलाता हुआ अपने ही शुद्ध, साक्षी, चेतन स्वरूप में स्थित होकर मूल अविद्या का बाध करते हुए अधिष्ठान-रूप ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। फिर उस शुद्ध ब्रह्म का कभी भी जन्म नहीं होता। इसी का नाम विदेहमोक्ष कहा गया है।

देहादि प्रपञ्च की प्रतीति के होते जो ब्रह्मस्वरूप स्थिति है, उसे तो जीते जी मुक्ति या जीवनमुक्ति कहते हैं और देहादि प्रपञ्च की प्रतीति रहित ब्रह्म-स्वरूप से स्थिति सो विदेह-मुक्ति कही गई है। जिस प्रकार किसी छपे हुए अखबार को यदि अग्नि में जला दिया जाए तो जलने के बाद जब तक वह राख में परिणित नहीं होता है तब तक उस पर अंकित खबरों को पढ़ा जा सकता है पर यदि हवा का झौंका आए और उसे उड़ा ले जाए तो वह केवल राख ही प्रतीत होगी। अब उस पर अंकित अक्षरों का लय उसी राख के साथ हो जाता है। ठीक इसी प्रकार ज्ञानी के भीतर जो ज्ञानाग्नि प्रकट हुई उससे उसके हृदय के समस्त संस्कारों का दग्ध होना स्वाभाविक है परन्तु प्रारब्धान्त से पूर्व उस देह में होने वाली समस्त क्रियाओं को देखा जा सकता है। जिस दिन प्रारब्धान्त रूपी वायु का झौंका उस देह को मिट्टी रूप कर देता है उस दिन उसकी समस्त क्रियाएँ भी अप्रतीयमान हो जाती हैं और उस चिदाभास का अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म ही शेष रहता है, जिसका कभी जन्म सम्भव ही नहीं। इस प्रकार जिन ब्रह्मवेताओं ने मूलाविद्या का नाश करके अपने जीवभाव का शुद्ध ब्रह्म में विलय कर दिया हो ऐसे महापुरुषों को शत् शत् नमन्!

शिवोहं! शिवोहं!! शिवोहं!!!

राजधानियों के निर्माण में जयपुर का योगदान

– स्वरूपसिंह जिंझनीयाली

जयपुर राजघराना भगवान राम के पुत्र कुश का वंशज है। यह कच्छावा कहलाते हैं, जिनकी खांप राजावत है। मुगलकाल से ही इनका भारत के राजनैतिक परिपेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अकबर के नवरत्नों में एक राजा मानसिंह बहुत बहादुर सेनानायक रहे हैं। उन्होंने अकबर की राजधानी फतेहपुर सीकरी के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। आगरा में उनकी ही जमीन पर राजा जयसिंह ने शाहजहाँ को यमुना के किनारे ताजमहल बनाने के लिये बेशकीमती जमीन भेंट की जिसका मालिकाना हक पट्टा आज भी राजा मानसिंह के नाम है। आगरा एवं दिल्ली लालकिला निर्माण में यहाँ के शासकों का सहयोग रहा।

1728 ई. में राजा जयसिंह द्वितीय ने आमेर से अलग जयपुर नगर की स्थापना की तथा इसे अपनी राजधानी बनाया। उन्होंने पुरानी दिल्ली के बाहर जयसिंहपुरा गाँव बसाया। जहाँ अपने महल, आज का वहाँ का प्रसिद्ध हनुमान मंदिर तथा जन्तर-मन्तर वेधशाला बनवाई। सिक्ख धर्म के आठवें गुरु हर किशन जयसिंहपुरा गाँव में राजा के महल में रुके थे तब दिल्ली में फैली भयंकर चेचक बिमारी से मात्र नौ वर्ष की अवस्था में उनका निधन हो गया। राजा जयसिंह ने यह महल सिक्ख अनुयाइयों को भेंट कर दिया था जहाँ आज उनका प्रसिद्ध बंगला साहिबा गुरुद्वारा है।

ब्रिटिश काल में भारत की राजधानी जब कलकत्ता थी तब जयपुर के महाराजा रामसिंह, माधोसिंह द्वितीय ने विक्टोरिया मेमोरियल एवं अन्य इमारतें बनाने में सहयोग किया। सन् 1911 में वायसराय लार्ड हार्डिंग ने इंग्लैण्ड के राजा जार्ज पंचम एवं महारानी के ताजपोशी के उपलक्ष्य में दिल्ली दरबार का आयोजन किया था। जिसमें भारतवर्ष के समस्त शासक उपस्थित हुए थे। जहाँ कलकत्ता से भारत की राजधानी को दिल्ली लाने की घोषणा कराने में जयपुर महाराजा माधोसिंह द्वितीय का महत्त्वपूर्ण हाथ था। नई दिल्ली की स्थापना के लिये रायसीना हिल्स एवं लुटियन जोन में भूमि देने व भवन निर्माण में जयपुर की महत्ती भूमिका रही। तब के वायसराय हाऊस एवं अभी के राष्ट्रपति भवन के ठीक सामने जयपुर के राजचिह्न एवं महाराजा माधोसिंह के नाम वाले ''जयपुर पिलर'' को अपनी भव्यता एवं सुन्दरता के साथ आज भी गौरव से खड़ा देखा जाता है। यह उनके योगदान की अमर निशानी है। माधोगंज तथा राजा का बाजार का इलाका अंग्रेज सरकार को आधुनिक बाजार बनाने के लिये यहाँ के वाशिंदों को करोल बाग में बसाकर दिया गया था। जहाँ सुन्दर एवं भव्य 'कनाट प्लेस'' मार्केट एवं अन्य इमारतें बनी हैं, जयपुर की जमीन है।

देश की आजादी पर राजपूताना की सभी रियासतों के एकीकरण के बाद राजस्थान की राजधानी को जयपुर में लाने में महाराजा मानसिंह द्वितीय का पूर्ण योगदान रहा। अपनी सेना सवाई मान गार्ड के भवन जहाँ आज सचिवालय है, सिविल लाइन्स के बंगले एवं भवन जहाँ राज्यपाल, मुख्यमंत्री एवं मंत्रियों के निवास हैं, महाराजा कॉलेज, महारानी कॉलेज, सवाई मानसिंह अस्पताल तथा मेडीकल कॉलेज मेयो अस्पताल (जनाना हॉस्पिटल), अलबर्ट हॉल म्युजियम तथा रामनिवास बाग यादगार भवन, MLA निवास के लिये खुद का मेहमान निवास (पुलिस कमिश्नरेट) विधानसभा चलाने के लिये सवाई मान टाऊन हॉल, चौगान मैदान तथा सवाई मानसिंह स्टेडियम, 1947 में बनी राजपूताना विश्वविद्यालय (राजस्थान वि.वि.) की समस्त भूमि आपने नई सरकार को सौंपी। खासा कोठी एवं सर्किट हाऊस के भवन, आमेर तथा नाहरगढ़ के किले, सरोवर व जलमहल, रामगढ का बाँध, सांगानेर का हवाई अड्डा, जयपुर रेल्वे सहित बहुत-सी भूमि-भवन एवं सम्पत्ति सरकार को भेंट दी गई।

महाराजा मानसिंह प्रसिद्ध पोलो खिलाड़ी एवं विश्व कप जीती पोलो टीम के कप्तान, राजप्रमुख (राज्यपाल) राज्यसभा सांसद तथा स्पेन में भारत के राजदूत रहे। ●

मग भूल गया है जो

– गिरधारीसिंह डोभाड़ा

'मग भूल गया है जो उसका नहीं कोई रे'– पूज्य श्री तनसिंहजी की यह पंक्ति हमें बहुत कुछ कह रही है। हमें बहुत कुछ समझा रही है। जिस राही को अपने गंतव्य स्थल पर जाना है, वह अपने गंतव्य स्थल की ओर ले जा रही राह को छोड़कर अन्य राह पर चल पड़ता है तो वह अपने गन्तव्य स्थान पर कैसे पहुँचेगा? वह अपने लक्ष्य को कैसे प्राप्त कर सकेगा? और ऐसे व्यक्ति का कौन सहयोग करेगा?

हमारे तपस्वी और कर्मठ ऋषि-मुनियों ने हमें समझाया है कि जिस परमपिता परमेश्वर ने यह सृष्टि रची है उसमें हर एक जीव का सृष्टि व जड़ चेतन के लिए उसकी प्रवृति के अनुसार, उसके स्वभाव के अनुसार, कोई न कोई लक्ष्य निर्धारित किया है। उसके लिए उसका कर्तव्य निर्धारित किया है। उसके लिए उसका स्वधर्म बताया है। जड़ पदार्थ के लिए भी यह निर्धारित किया गया है कि उसकी प्रवृति के अनुसार वह किस काम आयेगा या उसका क्या उपयोग हो सकेगा। जैसे कि पत्थर है तो वह, मंदिर, मूर्ति, मकान, महल आदि के निर्माण में काम आयेगा। मिट्टी है तो वह वनस्पति उगाने में, अन्न उगाने में काम ली जायगी। अग्नि है तो वह प्रकाश देने में, खाना पकाने में, निकम्मी चीजों को जलाने आदि कामों में उपयोग में ली जायेगी। उसी प्रकार मनुष्यों के लिए भी उनके चार प्रकार के कार्यों का विभाजन किया गया है, जैसे कि ज्ञान प्राप्त कर ज्ञान देना, दया, करुणा और क्षमा करना इत्यादि सतकर्म करना। दूसरे वर्ग के गुण स्वभाव के अनुसार सद् तत्त्वों की रक्षा करना, दान देना, सब पर ईश्वरीय भाव रखना, दुष्टों को दण्ड देना इत्यादि। तीसरे एक वर्ग के लिए कृषि, पशुपालन, व्यापार, उद्योग जैसे कार्यों द्वारा अन्य लोगों के जीवनयापन के लिए जरूरी चीजों का निर्माण करना और उन्हें बाँटना। एक वर्ग जो अपने स्वभाव और गुण के अनुसार उपरोक्त जो कार्य बताए वह नहीं कर सकता है तो उसके लिए दूसरों की सेवा करने का कार्य सौंपा गया।

इस प्रकार भगवान ने मनुष्य के गुण कर्म स्वभाव के अनुसार चार श्रेणियाँ बनायी हैं। जिसे चार वर्ण के नाम से पहचाना जाता है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः। गीता अ4श13

गीता के अनुसार –

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शुद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः।। गीता 18:41

1. ब्राह्मण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य और 4. शूद्र। यह चार वर्ण या मानव श्रेणियाँ हैं। गुण स्वभाव केअनुसार गीता में उनके कर्म भी निर्दिष्ट किये गये हैं।

1. ब्राह्मण– **शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।**
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।
गीता 18:42

मन का शमन, इन्द्रियों का दमन, पवित्रता, मन वाणी और शरीर को इष्ट के अनुरूप तपाना, क्षमाभाव, मन इन्द्रियों की सरलता, आस्तिकता, परमात्मा का ज्ञान, उससे मिलने की जागृति एवं उसके अनुसार चलने की क्षमता, ये ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण कर्म हैं।

2. क्षत्रिय– **शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युध्ये चाप्यपलायनम्।**
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।
गीता 18:43

शूरवीरता, ईश्वरीय भाव, तेजस्विता, धैर्य, दक्षता, संघर्ष से पलायन न करना, दानवीरता ये क्षत्रिय के स्वभाविक गुण कर्म हैं।

3. वैश्य– **कृषिगौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।।**
गीता 18:44

कृषि, गौ रक्षा और व्यवसाय (पशुपालन) व्यापार-वाणिज्य वैश्य के स्वभावानुसार के कर्म हैं।

4. शूद्र– **परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।**
गीता 18:44

अपनी बुद्धि, स्वभाव और गुण के अनुसार कौशल्यपूर्ण परिचर्यात्मक कार्य करना शूद्र के स्वाभाविक कर्म हैं।

सत्युग, त्रैतायुग और द्वापर के अन्तिम चरण आने तक तो चारों वर्ण अपने गुण स्वभाव के अनुसार अपने नियत कर्मों के प्रति जागरूक थे और उसके अनुसार अपने स्वधर्म का पालन करते आये थे। तब तक तो संसार में सुख शान्ति का वातावरण बना रहा। प्रत्येक वर्ण के लोग अपने-अपने स्वभावानुसार अपने-अपने निर्धारित कर्म करते रहने से संसार में सभी वर्णों की उपयोगिता बनी रही थी। न कोई ऊँच था न कोई नीच था। हाँ ऋषि-मुनियों को और शासक वर्ग को कुछ विशेष आदर दिया जाता था। वह इसलिए नहीं कि वे ऊँचे थे बल्कि उनका जीवन विशेष कष्टदायक और त्यागमय था। वे अपने स्वयं के सुखभोग के लिए नहीं बल्कि सारे संसार को सुख दिलाने के लिए ही अपना त्यागमय जीवन जीते थे। ब्राह्मण लोग, ऋषि-मुनि या तपस्वी लोग जो अपनी तपस्या के बल, ज्ञान, विज्ञान या ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर चुके होते थे वे संसार को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते रहते थे। उसके लिए वे स्वयं भी निरंतर तपस्या में लगे रहते थे। उन्हें अपने निज जीवन का कोई स्वार्थ नहीं रहता था।

क्षत्रिय का जीवन तो परित्राणाय साधूनाम के लिए ही होता है। उसका जीवन बलिदान और त्याग का ही होता है। क्षत्रिय यदि अपने लिए जीवन जीयें तो परित्राणाय साधूनाम् कैसे संभव हो सके। क्षत्रिय यदि धर्म की, सत्य की रक्षा न करे तो संसार में दु:ख, अशान्ति और अराजकता ही फैल जाये। क्षत्रिय को आसुरी तत्वों को दण्डित करने के लिए, उनका नाश करने के लिए सदा शक्ति संपादित करते रहना पड़ता है। शक्ति संपादन के लिए सदा कष्टमय जीवन जीना पड़ता है और सदा ही ऐश आराम, स्वार्थपरायणता से संघर्ष करते रहना पड़ता है। सदा जागरूक रहना पड़ता है आसुरी तत्वों के नाश के लिए। अयोध्या के शक्तिशाली राजा दशरथ के पुत्र राजकुमार रामचन्द्र को चौदह वर्ष का वनवास करने की क्या आवश्यकता थी? फिर भी उन्होंने चौदह वर्ष तक वनवास करके कष्टमय जीवन जीया और सत्य, धर्म की रक्षा के लिए असुर राक्षसों का नाश किया। साधुमार्गी ऋषि-मुनियों और तपस्वियों की एवं सारे संसार की तामस से रक्षा की। तभी तो वे भगवान श्री रामचन्द्र जी कहलाए। वे अपने कर्तव्य पथ को नहीं भूले थे। क्योंकि वे क्षत्रिय थे और क्षत्रिय के स्वधर्म को नहीं भूले थे। क्षत्रिय के रूप में भगवान श्री रामचन्द्र जी ने ऐसा आदर्श राज्य-शासन किया जो रामराज्य कहलाया। जिसका अन्य पर्याय आज तक संसार को नहीं मिला।

द्वापर युग के अन्तिम चरण तक संसार में क्षत्रियों द्वारा सुशासन रहा क्योंकि क्षत्रिय अपने कर्तव्य पथ पर चलते रहे। इस काल तक क्षत्रियों ने अपना निजी स्वार्थ नहीं देखा था। परमार्थ ही इनका कर्मपथ था। द्वापर के अन्तिम चरण में क्षत्रिय शासकों ने अपने निजी स्वार्थ को महत्त्व दिया, वे कर्तव्य पथ को छोड़कर निजी स्वार्थ के मार्ग पर चलने लगे। कौरव और उनको साथ देने वाले क्षत्रिय इसका उदाहरण हैं। कौरव पक्ष के क्षत्रिय अपने कर्तवय मार्ग से हटने लगे। कौरवों के प्रभाव में आकर एवं उनका आश्रय पाकर आचार्य द्रोण और कृपाचार्य व अश्वस्थामा जैसे ब्राह्मण ज्ञानी और महारथियों ने भी कौरवों के पक्ष में रहकर अधर्म विरुद्ध कुछ भी न किया या कुछ भी न कर पाये। वे भी अपने स्वधर्म को, अपने कर्तव्य को छोड़कर केवल अपने हित साधन के पक्ष में ही बने रहे। यह जानते हुए भी कि जिसके पक्ष में युद्ध करने जा रहे हैं वह अधर्म का मार्ग है। महान योद्धा, अजेय, महाज्ञानी, इच्छामृत्यु का वरदान प्राप्त करने वाले पाण्डव और कौरव दोनों के पितामह देवव्रत जो अपनी दृढ प्रतिज्ञा से भीष्मपितामह कहे जाने लगे, वे भी अहंवश अपनी प्रतिज्ञा का बहाना लेकर अधर्म के पक्षी कौरवों के अधर्म के पक्ष में रहे। महादानी, महारथी कर्ण ने भी यह जानते हुए कि कौरव अधर्म के मार्ग पर चल रहे हैं, वचन पालन के बहाने अधर्मी दुर्योधन का साथ दिया। इस प्रकार किसी न किसी बहाने ग्यारह अक्षौहिणी क्षत्रिय अधर्म की

ओर से, अधर्म के पक्ष में युद्ध करने के लिए मैदान में उतर आये। इस प्रकार जो जानते हुए कि यह उसका गंतव्य मार्ग नहीं है फिर भी वह उस मार्ग पर जाता है तो उसे कौन सहयोग करेगा। वह तो डूबेगा ही और साथ चलने वालों को भी डूबोयेगा। पाण्डव जो कि धर्म के पक्ष में थे उनका करीब सारा जीवन कष्टों में बीता लेकिन वे धर्म के मार्ग पर ही चलते रहे। उन्होंने क्षत्रिय धर्म को पहचान लिया था। उन्होंने अपने स्वार्थ का मार्ग नहीं बल्कि संसार के कल्याण का ही मार्ग चुना था। जब धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में महाभारत का युद्ध होने जा रहा था। उस समय दोनों ओर की सेनाओं का निरीक्षण करने महारथी अर्जुन गया तो, दोनों ओर की सेनाओं में अपने ही संबंधियों को देख अर्जुन विषाद में पड़ गया कि जिनके सुख के लिए मैं युद्ध करने जा रहा हूँ वे सब तो मारने-मरने पर उतारू हैं, और अपना गांडीव त्याग कर नीचे बैठ गया। तब श्री कृष्ण ने गीता के उपदेश द्वारा उसका मार्गदर्शन किया। अर्जुन का संशय नष्ट हो गया और युद्ध में अधर्म के पक्ष का नाश करके विजय को प्राप्त हुआ।

क्षत्रियों और ब्राह्मणों के पतन की करीब-करीब शुरुआत महाभारतकाल से ही हो चुकी थी। वेदव्यास जैसे कुछ ही महऋिषियों को छोड़कर द्रोण और कृपाचार्य जैसे ब्राह्मणों ने राज्याश्रित होकर समाज में ऊँच-नीच के कू-बीज बो दिए थे। जो कालक्रम में समाज को विभाजित करने में सहायक बने। समय बीतते ब्राह्मणों ने उनका अनुसरण करते समाज में, संसार में ऊँच-नीच का इतना भयंकर प्रदूषण फैला दिया कि समाज में छुआछूत का भयंकर रोग फैल गया। समाज जात-पांत में बंट गया। सनातन धर्म या वैदिक आध्यात्मिक प्रक्रिया के स्थान पर पापनाश, दोषमुक्ति, पुण्यप्राप्ति के लिए ब्राह्मणों द्वारा क्रियाकाण्ड या कर्मकाण्ड अपनाया गया। बलि प्रथा अपनायी गयी। सतयुग, त्रेतायुग और द्वापर युग में ब्राह्मण-ऋषि-मुनि आवश्यकता पड़ने पर एवं समय-समय पर क्षत्रियों को सनातन धर्म का जो मार्गदर्शन करते रहते थे उसका स्थान अब कर्मकाण्ड ने ले लिया था। क्षत्रिय हमेशा से ब्राह्मणों का आदर सम्मान करते आये हैं। उन नये ब्राह्मणों के मार्ग पर चलकर क्षत्रिय भी अपने सनातन मार्ग से भटक गये। वे अपने कर्तव्य पथ को भूल गये। जो क्षत्रिय स्वयं अपनी श्रद्धा द्वारा ज्ञानार्जन करते थे और संसार को भी मार्गदर्शन कराते थे, वे अब कर्मना नहीं बल्कि जन्मना ब्राह्मणों के मार्गदर्शन के अवलम्बित हो गये। ज्ञानोपार्जन में परावलम्बी हो गये। इस दूषण का अनुकरण संसार के अन्य वर्णों ने भी किया। संसार में अराजकता और अशान्ति फैल गयी। धर्म के नाम पर क्रियाकाण्ड, कर्मकाण्ड और पशुबलि इतना बढ गया कि क्षत्रिय अपना स्वाभाविक स्वधर्म का मार्ग छोड़कर अन्य मार्ग पर चल पड़े।

जब-जब संसार में क्षत्रिय स्वधर्म पालन से च्युत हो जाते हैं और संसार में अधर्म और अराजकता फैल जाती है, तब-तब क्षत्रियों को मार्गदर्शन करने के लिए भगवान स्वयं क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर क्षत्रियों का मार्गदर्शन करते हैं। इसी काल में भगवान बुद्ध ने क्षत्रिय राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में जन्म लिया। राजकुमार सिद्धार्थ ने संसार का त्याग करके तपस्या द्वारा सत्य ज्ञान प्राप्त किया और गौतम बुद्ध कहलाए। गौतम बुद्ध ने संसार में दु:ख का कारण तृष्णा बताया और अहिंसा के मार्ग पर चलने को कहा। सभी मानव समान हैं, न कोई ऊँच है न कोई नीच है। क्षत्रिय राजा बुद्ध के बताये मार्ग पर चलने लगे उसी समय भगवान महावीर, जो क्षत्रिय राजकुमार थे उन्होंने भी अहिंसा और जैन धर्म का प्रचार किया। मगध सम्राट महान अशोक ने कलिंग विजय के बाद शस्त्र त्याग कर बौद्ध धर्म का अहिंसा का मार्ग अपनाया। इस काल में ज्यादातर क्षत्रिय राजाओं ने गौतम बुद्ध और महावीर के अहिंसा के मार्ग को अपनाया।

अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य के समय ईरान का सम्राट अलकजान्दर (सिकन्दर) विश्व विजय करने निकला था। उस समय भारत छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। एक ब्राह्मण शिक्षक विष्णुगुप्त चाणक्य ने इन

(शेष पृष्ठ 25 पर)

योग का क्षत्रिय के जीवन में महत्त्व

– विरमसिंह वरिया

योग यानी जोड़। अपने आपको ईश्वर से जोड़ना योग है। अपने में रहना योग है। सुप्त शक्तियों का प्रकटीकरण योग है। सभी कर्मों में कुशलता योग है। चित में आने वाली वृतियों को रोकना योग है। क्षत्रिय के लिए योग का महत्त्व है, क्योंकि सर्वप्रथम यह योग क्षत्रियों को ही दिया गया था। भगवान श्रीकृष्ण गीता के चतुर्थ अध्याय के पहले श्लोक में कहते हैं –

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवा नहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राहमनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।

अर्थात्– मैंने इस अविनाशी योगी को सूर्य से कहा था। सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदु:।
स कालेनेह महता योगो नष्ट: परन्तप।।

अर्थात्– हे परन्तप अर्जुन! इस प्रकार परम्परा से प्राप्त यह योग बहुत काल से इस पृथ्वीलोक में लुप्तप्राय हो गया।

स एवायं मया तेज्द्य योग: प्रोक्त: पुरातन:।
भक्तोऽसि में सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।

अर्थात्– तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है।

योग दर्शन भारतीय परम्परागत षड्दर्शनों में से एक है। योग के आदि आचार्य हिरण्यगर्भ है, परन्तु महर्षि पतंजलि ने इनके लुप्त प्राय: दर्शन को 195 योगसूत्रों में संग्रहित, विभाजित एवं क्रमबद्ध कर मानवमात्र के सभी जिज्ञासुओं एवं साधकों के लिए बड़ा उपकार किया है। यह मार्ग जीवात्मा को परमात्मा से युक्त करना सिखाता है। शरीर, मन और आत्मा की समग्र शक्तियों को परमात्मा में संयोजित करना योग है। महर्षि पतंजलि ने 'योगश्चित वृत्ति निरोध'' यानी चित में उठने वाली वृत्तियों के रोकने को योग कहा है। भगवद्गीता में ''समत्वं योग उच्यते'' ''योग कर्मसु कौशलम्'' आदि कहकर योग को समझाया है। योग मार्ग पर चलना मनुष्य जीवन की सतत् साधना है। निरंतर अभ्यास और वैराग्य द्वारा ही अत्यन्त चंचल मन को संयमित एवं संतुलित किया जा सकता है। मन जब शान्त रहता है तभी हम अपने असली स्वरूप को देख पाते हैं यानी दृष्टा (पुरुष) अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। मन की यह निरुद्ध अवस्था हमें समाधि की ओर ले जाती है। यही है मानवमात्र का चरम लक्ष्य।

महर्षि पतंजलि ने आत्मा की खोज के लिए आठ अंगों यानी आठ अवस्थाओं के नाम गिनाएँ हैं।

1. यम :– इसके पाँच अंग हैं, यथा–अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय एवं अपरिग्रह। ये मनुष्य जीवन के व्यापक एवं सार्वभौम नैतिक कर्तव्य हैं।

2. नियम :– इसके भी पाँच अंग हैं, यथा– शौच, तप, संतोष, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान। नित्य व्यवहार के लिये उपयोगी ये पंच–नियम चित शुद्धि में सहायक है।

3. आसन :– ''स्थिर सुखमासनम्'' सुखपूर्वक व सुगमता से शरीर जिस स्थिति में अधिक देर तक बैठ सके, आसन कहलाता है। आसन से स्थिरता स्वास्थ्य तथा अंग में हल्कापन आता है। शनै: शनै: इससे मन नियंत्रित होता है।

4. प्राणायाम :– इससे प्राण शक्ति (ऊर्जा) को नियंत्रित करके आंतरिक शक्तियों को केन्द्रित करने में साफल्य प्राप्त किया जाता है। प्राणायाम को श्वास विज्ञान भी कहते हैं।

5. प्रत्याहार :– जब इन्द्रियाँ अपने विषय को छोड़कर चित का स्वरूप ग्रहण करने लगती है, तब उसे प्रत्याहार कहते हैं।

6. धारणा :– किसी एक विषय में चित की एकाग्रता धारणा कहलाती है। जैसे मीरां की कृष्ण के प्रति।

7. ध्यान :– धारणा के विषय को चेतना केन्द्र में टिकाए रखना, उसी पर चिन्तन ध्यान कहलाता है।

8. समाधि :– अवस्था जिसमें साधक अपने साध्य परमात्मा के साथ एक हो जाता है, समाधि है। यम व नियम योगी (साधक) के विकारों एवं भावनाओं को नियंत्रित रखते हैं। आसन शरीर को स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनाता है तथा साधक को इस योग्य बना देता है कि विभिन्न परिस्थितियों में भी अबाधित गति से वह अपनी साधना में आगे ही बढ़ता जाए। ये प्रथम तीन अवस्थाएँ बहिरंग-साधना कहलाती है। प्राणायाम और प्रत्याहार साधक को श्वासों का संचालन सिखाती है। जिससे मन नियंत्रित होता है तथा विषय वासना के दासत्व से चेतना शनैः शनैः मुक्त होने लगती है। योग की ये दोनों अवस्थाएँ अंतरंग साधना कहलाती हैं। धारणा ध्यान और समाधि योगी को उसकी आत्मा के अंतरमन के गहन स्थान में ले जाती है, योग की ये तीनों अवस्थाएँ अंतरात्मा कहलाती है। साधक की अन्तिम खोज समाधि ही है, तब ज्ञाता व ज्ञात में द्वैतभाव नहीं रहता, ये परस्पर विलीन हो जाते हैं। तब ''अहम्'' और ''मम्'' का अभाव होने के कारण शरीर, मन, बुद्धि की क्रिया निश्चेष्ट होती है मानो कोई गहरी निद्रा में है। साधक सच्चे योग को पहुँचा होता है। इस स्थिति में एक अक्षय आनन्दानुभूति होती है जो मेघा से परे है अतः अवर्णनीय है। इस योग को सिद्ध कर योगियों ने सच्ची शान्ति, ईश्वर चिन्तन और सुख प्राप्त किया है।

कुण्डलिनी का महत्त्व :– प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक अनन्त शक्ति निवास करती है। यह शक्ति विश्व का आदि कारण है। इस अनन्त शक्ति के दो रूप हैं, एक प्रकट दूसरा प्रसुप्त। जिनको हम बाहर जगदम्बा राधा, सीता, पार्वती के रूप में पूजते हैं उसी शक्ति का आंतरिक रूप कुण्डलिनी है। यह रीढ़ की हड्डी के निचले भाग में साढ़े तीन आंटे लगाए हुए मुँह उल्टा किए हुए पूंछ को मुँह में दबाए सुषुप्तावस्था में रहती है योगियों ने इसे कुण्डलिनी कहा है जिसे ज्ञानी आत्मा या चिती कहते हैं। यही ईश्वरीय अंश हमारे कर्मों का हिसाब रखती है। इसी को जगाकर छः चक्रों का भेदन कर सहस्रार चक्र में विलीन करना ही मोक्ष है। यह गुरु कृपा या शक्ति की कृपा से ही संभव है। कुण्डलिनी जागरण से व्यक्ति में सभी प्रकार की कुशलताएँ आती हैं और वह सभी रोगों से मुक्त हो जाता है।

मध्यनाड़ी :– बाहर से देखने पर यह शरीर हाड-माँस और रक्त का बना दिखता है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। शरीर में अनेक नाड़ियाँ भी हैं। ये नाड़ियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य करती हैं। कुछ रक्त वाहिनी, कुछ वायु वाहिनी, कुछ प्राण वाहिनी है। इस शरीर को बनाने वाली 72,000 नाड़ियों में से 100 नाड़ियाँ महत्त्व की हैं, जो सभी नाड़ियों को आधार प्रदान करती है। इन नाड़ियों में से 10 नाड़ियाँ ऐसी हैं, जो सभी 100 नाड़ियों को नियंत्रित करती है और इन 10 नाड़ियों का आधार 3 नाड़ियाँ हैं- इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना जो अत्यन्त महत्त्व की हैं। इड़ा व पिंगला के बीच में सुषुम्ना नाड़ी ही 72,000 नाड़ियों को नियंत्रित करती है। सुषुम्ना के अन्दर चित्रिणी नाम की नाड़ी के अन्दर कुण्डलिनी का निवास स्थान है। सुषुम्ना को ही ब्रह्म नाड़ी संवित्री नाड़ी, मध्यनाड़ी या महाकुण्डलिनी शक्ति की पगडंडी भी कहते हैं। मनुष्य के सभी कर्म और उसके जन्म जन्मांतरों के संस्कार यहीं संचित रहते हैं।

आज्ञा चक्र :– कुण्डलिनी जैसे-जैसे ऊर्ध्वगमन करने लगती है नीचे के चक्रों का भेदन होने लगता है। चेतना का बोध भूमध्य में स्थित आज्ञा चक्र में होने लगता है। इस चक्र को गुरु पीठ भी कहते हैं। आज्ञा का अर्थ है 'आदेश' और कुण्डलिनी अंतर गुरु के आदेश के बिना इस चक्र के आगे नहीं बढेगी। आज्ञा चक्र के भेदन होने के बाद आपको मनोलय होने की अनुभूति होने लगती है। मन बिल्कुल शान्त व एकाग्र हो जाता है। और जिन विचारों के कारण, आप परेशान रहते हैं वे शान्त होने लगते हैं। यह साधना की अन्तिम अवस्था का आरम्भ है, जो आपको परम् शान्ति की ओर ले जाती है।

परमप्राप्ति :– सहस्रार के मध्य में एक त्रिकोण है, जो ध्यान में दिखायी देता है और इस त्रिकोण के मध्य में शिव का वास है, जिन्हें परम गुरु भी कहते हैं। कुण्डलिनी की अंतर यात्रा का यही लक्ष्य है। जब कुण्डलिनी सहस्रार में पहुँचती है, तब उसका विलास शुरू होता है और वह इस क्रीड़ा द्वारा आपको यह बोध करा देती है कि यह जगत परमात्मा का एक विलास मात्र है। जब आप में इस शुद्ध ज्ञान का उदय होता है तब आपको ईशत्व की प्राप्ति होती है, यही मोक्ष है।

क्षत्रिय के लिए योग का महत्त्व :– क्षत्रिय शक्ति का उपासक है, और हमारी आत्मा, कुण्डलिनी, चिति शक्ति का रूप है। इस कारण क्षत्रिय शक्ति से स्नेह रखता है और शक्ति क्षत्रिय पर कृपा दृष्टि रखती है। क्षत्रिय अंतरमुखी व बहिर्मुखी साधना का समन्वयक होता है। शक्ति का उपासक होने के कारण ही वह एक योद्धा व एक संत बन सकता है। क्षत्रिय का सिर कटने के बाद लड़ना यह दर्शाता है कि वही शक्ति काम करती है जिसको हम बाहर शक्ति के रूप में पूजते हैं। अतः क्षत्रिय को जीवन में योग को अपनाना चाहिए जिससे कि संकट में योगमाया सहयोग करेगी व अंत में मुक्ति प्रदान करेगी। योग से तामसिकता दूर होती है, सात्विकता का समावेश होगा यही राजपूत से क्षत्रिय बनना है।

पृष्ठ 22 का शेष

मग भूल गया है जो

राजाओं को चन्द्रगुप्त मौर्य के नेतृत्व में संगठित होकर यवनों का सामना करने का अभियान चलाया। पंचनद के पर्वतेश्वर राजा पोरस के साथ हुए युद्ध में हालांकि अलकजान्दर की विजय हुई लेकिन पोरस के पराक्रम को देख यवन सेना घबरा गई उसने अपने वतन ईरान–फारस जाने के लिए विद्रोह कर दिया और अलकजान्दर को वापस लौट जाना पड़ा। इसके बाद भी भारत पर कुशाण, हूण, शक जैसी बर्बर जातियों के आक्रमण होते रहे। भारतीय शासकों और आक्रमणकारियों के बीच होते रहे इन युद्धों में कभी भारतीयों की तो कभी आक्रमणकारियों की विजय होती थी, लेकिन आक्रमणकारी भारत में अपना राज्य स्थापित करने में सफल नहीं हुए। उन्हें वापस लौट जाना पड़ा या भारतीयों में घुल–मिलकर रहना पड़ा और भारतीय संस्कृति अपना ली। भारत में सुख, शान्ति और समृद्धि बनी रही। उज्जैन का परमार वंशी राजा विक्रमादित्य पर दुःख भंजन कहलाया, जिसके नाम से विक्रम संवत् शुरू हुआ। गुप्त वंशीय राजा समुद्रगुप्त का शासनकाल भारतवर्ष का सुवर्णकाल रहा।

ईसा की छठी शताब्दी में भारत में दो शक्तिशाली राजाओं का शासन रहा। मध्य भारत की नर्मदा नदी के उत्तरी भाग में हर्षवर्धन का और दक्षिणी भाग में चालुक्य वंशी पुलकेशी का राज्य था। हर्षवर्धन के अधीन जो–जो छोटे बड़े राज्य थे वे उसकी मृत्यु के बाद स्वतंत्र होने लगे जिससे भारत छोटे–छोटे राज्यों में बंट गया। दक्षिणी भारत में भी ऐसा ही हुआ। क्षत्रिय कुल के ये राजवंश अब राजपूत कहलाए जाने लगे और इस प्रकार इतिहास में उनका समय मध्यकालीन राजपूत युग कहलाने लगा। हालांकि ये क्षत्रिय वंशी राजपूत सुसंस्कारी, प्रजापालक और धर्मरक्षक ही थे लेकिन छोटे–छोटे कई राज्य होने के कारण भारत एक चक्रवर्ती सम्राट के शासन तले नहीं आ सका। भारत की राष्ट्रीय एकता नहीं रह पायी। चौहाण (चह्माण) वंशी पृथ्वीराज दिल्ली का अन्तिम सम्राट अवश्य बन पाया लेकिन वह भी भारत के अन्य राजाओं को एकता के सूत्र में नहीं बाँध सका। क्षत्रिय अब तक राजपूतों की कई शाखा–उपशाखा में बंट चुके थे। वे अपने निजी स्वार्थ और वंशीय अहं के कारण आपस में लड़ते रहे। हालांकि उनकी व्यक्तिगत वीरता का दुनिया में कोई सानी नहीं था, लेकिन विदेशी आक्रांताओं के सामने एक जुट नहीं हो सके। विश्व के इतिहास में केवल राजपूत जाति ने ही ऐसे योद्धा दिए हैं जो सिर कटने पर भी उनका धड़ लड़ता रहा हो और दुश्मन दल के असंख्य सैनिकों को मौत के घाट उतार कर हाहाकार मचा दिया हो। इस जाति ने अवतारी पुरुष व कई लोकदेवता भी दिए हैं। **(क्रमशः)**

वर्तमान राजनीति और राजपूत समाज

– नरपतसिंह रताऊ

श्रेष्ठ शासन व्यवस्था का आधार उत्तम राजनीति है परन्तु भारत में अच्छे लोग राजनीति से घृणा करते हैं। वर्तमान परिवेश में राजनीति का स्तर बहुत गिर चुका है। वर्तमान परिवेश में राजनीति की गहरी समझ होना अनिवार्य है। इसके अभाव में व्यक्ति, वर्ग या समुदाय राजनीति में पिछड़ जाता है। वस्तुओं की कीमतें, नियम कायदे, शासन व्यवस्था का मूर्त रूप आदि राजनीतिक निर्णयों पर निर्भर करता है।

राजपूत समाज आदिकाल से राजनीतिक धुरी रहा है। श्रेष्ठ शासन देने वाला वर्ग आज राजनीतिक वर्चस्व में पिछड़ता जा रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि राजनीतिक समझ में कमी आई है या राजनीति के प्रति उदासीनता बढ़ी है। हमारे पूर्वजों ने हमेशा राजनीति की पराकाष्ठाओं को स्थापित किया है जिसे आज तक कोई नहीं लांघ सका। पूर्वजों ने श्रेष्ठ शासन व्यवस्था दी है। आज भी राम राज्य लाने की बात की जाती है लेकिन जब तक राजपूत समाज पुन: अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करेगा तब तक भारत में रामराज्य आना असंभव है।

राजपूत समाज ने हमेशा दूसरों की रक्षा की है लेकिन आज की परिस्थितियों में स्वयं की रक्षा करने में ही असमर्थता जाहिर होती है। कारण है राजनीति से विमुख होना या पिछड़ना। आज स्वार्थी व लालची किस्म के लोगों का राजनीति में बोलबाला है। जातिवाद व क्षेत्रवाद राजनीति पर हावी हो रहा है। राष्ट्रवाद की जगह जातिवाद व क्षेत्रवाद ने ले ली। ८०% से अधिक राजनेताओं पर आपराधिक व भ्रष्टाचार के मुकदमे चल रहे हैं। राजनीति का स्तर रसातल में जा रहा है। राजनीतिक मूल्यों का बहुतायत ह्रास हुआ है। इनसे श्रेष्ठ शासन की आशा करना व्यर्थ है। जब-जब राष्ट्र पर संकट आया है, तब-तब क्षत्रिय समाज संकटमोचक बनकर अग्रिम पंक्ति में खड़ा रहा है।

आज चारों ओर अराजकता फैली हुई है। अपराध, लूट-पाट, आतंकवाद, क्षेत्रवाद, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, जातिवाद आदि का बोलबाला है। आम नागरिक असुरक्षित महसूस कर रहा है। सुरक्षा देने वाला वर्ग आज स्वयं उदासीन है, गहरी निद्रा में सो रहा है। स्मरण रहे ये सभी अराजकताएँ क्षत्रिय समाज की निष्क्रियता का ही परिणाम है। हम दोषी हैं। इतिहास साक्षी है कि राष्ट्र को जितना नुकसान आततायियों से नहीं हुआ उससे ज्यादा नुकसान सज्जनों व बुद्धिजीवियों की उदासीनता से हुआ है। इसके लिये कहीं न कहीं हम भी जिम्मेदार हैं। समय रहते राजपूत समाज ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया तो स्थिति ज्यादा भयावह हो जायेगी। राजनेता जब महलों में रहते हैं यानी भोग-विलासिता का जीवन जीते हैं, तो प्रजा झोंपड़ी अर्थात् गरीबी, अशिक्षा और अराजकता इत्यादि का शिकार होती है। इन सभी चुनौतियों और इनके समाधान के लिए उत्तम राज्य व्यवस्था का होना अनिवार्य है। यह राज व्यवस्था उत्तम कैसे हो? क्षत्रिय समाज की भूमिका क्या हो? क्षत्रिय समाज का कर्तव्य क्या है? इन प्रश्नों पर प्रत्येक राजपूत को गहन चिंतन करने व अपने कर्तव्य के प्रति सजग होने की महत्ती आवश्यकता है।

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को उत्तम बनाने के लिए राजपूत समाज को पुन: दिशा और दशा तय करनी होगी। अपनी भागीदारी को बढ़ाना होगा। इसके लिये धरातल पर कुछ कार्यों को प्रमुखता देना होगा।

सोसियल मीडिया का सदुपयोग– वर्तमान में सोसियल मीडिया एक प्रभावी माध्यम है। यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हम इसका सदुपयोग करते हैं या दुरुपयोग। ज्यादातर व्हाट्सअप, ट्वीटर, फेसबुक आदि प्लेटफार्म पर तिल का ताड़ बनाया जाता है। दूसरों की आलोचनाओं के अम्बार लगा दिए जाते हैं। कहीं किसी ने हमारे समाज के प्रतिकूल पोस्ट कर दी या कहीं दूसरे समाज के साथ कोई घटना घटित हो गई तो हम आवेश में आकर धैर्य खो देते

हैं और आरोप-प्रत्यारोप शुरू हो जाते हैं। इस विषवमन से समाज के विरुद्ध वातावण तैयार होता है। हम जाने-अनजाने हमारा ही नुकसान कर बैठते हैं। सोसियल मीडिया पर महाज्ञानियों द्वारा ज्ञान की गंगा बहाई जाती है। हमें सोसियल मीडिया का उपयोग धैर्य व सूझ-बूझ से करना चाहिए। हमें प्रतिकार तो अवश्य करना चाहिए लेकिन सोच-समझकर दृढ़ता के साथ करें।

अन्य समाजों से संबंध- पूर्वजों ने हमेशा सभी जातियों को एक सूत्र में बाँधकर साथ रखा। आज भी दूसरे समाजों को साथ लाने की आवश्यकता है। हमें छोटे-छोटे समाजों का सहयोग करना होगा। उनकी आवाज बनें। अन्य समाज असहज महसूस कर रहे हैं। क्षत्रिय राजपूत समाज की ओर ताक रहे हैं। आज भी उन्हें राजपूत समाज से उम्मीद है कि यह समाज संकट मोचक बने। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। राजनीति में सभी समाजों को साथ लेकर चलने पर ही पुन: राजनीतिक वर्चस्व स्थापित किया जा सकता है।

सामाजिक एकता- ''संघे शक्ति कलौयुगे'' अर्थात् कलयुग में संगठन में ही शक्ति है। आज सिर कटाने की नहीं सिर गिनाने की आवश्यकता है। जो समाज संगठित है आज राजनीति में उसी समाज का वर्चस्व है। संगठित होकर जो आवाज बुलन्द करता है, सभी पार्टियाँ उस समाज को महत्त्व देती हैं।

पार्टीवाद- जो समाज पार्टी से बंध जाता है, सभी पार्टियाँ उस समाज की उपेक्षा करती हैं। इससे हम सब वाकिफ हैं। पार्टी के स्थान पर व्यक्ति को महत्त्व दें। समाज का अच्छा व मजबूत उम्मीदवार हो उसे एकजुट होकर मतदान करें। सभी पार्टियाँ समाज को महत्त्व देने लगेंगी।

युवा शक्ति- युवा ऊर्जा का स्रोत होता है। युवाओं को जागरूक होना होगा व समाज में राजनीतिक जागरूकता लानी होगी। उपर्युक्त बातों पर ध्यान दिया जाए तो राजनीतिक प्रतिष्ठा पुन: प्राप्त कर सकते हैं।

●

पृष्ठ 11 का शेष

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

1161 ई.- चौलुक्यों के सैन्याधिकारी रूप में पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर ने युद्ध में कौशल राज मल्लिकार्जुन शिलाहार का वध किया।

1161-62 ई.- सोमेश्वर और चेदि की कलचुरी राजकुमारी कर्पूरीदेवी का चौलुक्य राजधानी में विवाह संपन्न।

मई 1163 ई.- सपादलक्ष राज विग्रहराज चौहान का अन्तिम ज्ञात शिलालेख (दिल्ली शिवालिक) अंकित हुआ।[1]

अनिश्चित तिथि- विग्रहराज चौहान की मृत्यु।

अनिश्चित तिथि- विग्रहराज के तोमर पत्नी से जात पुत्र अपारगांगेय चौहान का राज्याभिषेक।

अनिश्चित तिथि- विग्रहराज के छोटे भाई व पितृहंता जग्गदेव चौहान के पुत्र पृथ्वीराज यानी पृथ्वीराज चौहान द्वितीय का अन्यत्र प्रवास से राज्य प्राप्ति हेतु लौटना, चौहान राज्य की कुछ भूमि पर अधिकार कर दिल्ली के राजा मदनपाल तोमर से युद्ध करना।

1166-1167 ई. का संधिकाल- दिल्ली के राजा व अपारगांगेय के नाना मदनपाल तोमर की मृत्यु।

1167 ई. का उत्तरार्ध- पृथ्वीभट का हांसी पर अधिकार और अपारगांगेय विरुद्ध निर्णायक अभियान चलाना।

अनिश्चित तिथि- अविवाहित अपारगांगेय चौहान[2] की पृथ्वीभट चौहान[3] से युद्ध में मृत्यु और पृथ्वीभट का राज्याभिषेक।

दिसम्बर 1167 ई.- पृथ्वीभट चौहान का पहला शिलालेख हांसी में अंकित होना।

मई 1168 ई.- पृथ्वीभट का दूसरा शिलालेख धोड़ (जहाजपुर से 7 मील दक्षिण पूर्व) में अंकित होना। अगले वर्ष ही उनकी बिना संतान मृत्यु हुई।

(क्रमश:)

1. दिल्ली शिवालिक शिलालेख, इंडियन एंटीक्वेरी खंड 19, पृ.218-220, 2. पृथ्वीराजविजय, सर्ग-8, श्लोक 54, जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी 1913 ई. पृ.276, 3. धोड़ शिलालेख, मई 1168 ई.।

स्मृति शेष

– रतन कँवर सेतरावा

आज जब आप लौकिक देह त्याग कर अलौकिक प्रकाश में विलीन हो गए हैं, तब मैं बैठी हूँ अतीत के उन सभी पन्नों को पलटने में, जिनमें आपका सान्निध्य प्राप्त हुआ। मुझे याद है मेरे प्रथम शिविर में परिचय देते हुए जब मैंने अपना नाम बोला–'रतन' तब आप मुस्कुराकर बोले–''अरे वाह! हम तो नाम राशी हैं।'' चार दिवस के उस शिविर में एक अटूट सा बंधन बंध गया आप से। मैं अभिभूत थी एक ऐसे शिक्षक से मिलकर जिसके सिखाने का तरीका बहुत ही अनूठा व निराला था।

प्रत्येक शिविर के साथ आपके दर्शन का लाभ भी प्राप्त होता। आपके सान्निध्य में मैंने अपना प्रथम उच्च प्रशिक्षण शिविर (O.T.C.) सन् 1998 में चौपासनी जोधपुर में किया तब आपके व्यक्तित्व के कई अनूठे रूपों को समझ पाई। जागरण गीत के समय जब कभी मुझे नींद की झपकी आती तो लगता जैसे आप अभी जोर से कहोगे कि–'ऐ लड़की! क्यों सो रही है?'और इसी काल्पनिक डर से आँखें पूरी खुल जाती। मैं देखती किस प्रकार प्रात: क्रीड़ा में आप हमसे ज्यादा उत्साह से व्यायाम करते, हमारे खेलों में इस तरह जान फूंकते कि हर खेल बड़ा मजेदार बन जाता।

शिविर में हर दिन नये विषयों और संदर्भों को छूता आपका बौद्धिक आपके गंभीर चिंतन और अध्ययन को दर्शाता। इतिहास विषय पर आपके बौद्धिक में, पू. आयुवानसिंहजी की पुस्तक 'ममता और कर्तव्य' की शीर्षक कथा में, गोरा के शौर्य और माँ पंवार जी के 'जौहर–उत्सर्ग' का करुण पठन करते हुए जब आपकी आँखें सजल हो जाती तो मैं सोचने लगती कि हमेशा दृढता की बातें करने वाली वाणी में आज रुदन कैसे आ गया? वहीं पू. तनसिंहजी की पुस्तक 'होनहार के खेल' से 'क्षिप्रा के तीर' में दुर्गादास जी के अतुलनीय बलिदान को पढकर आप अपने साथ हमें भी रुला देते थे। आपके इस भावुक व अति संवेदनशील रूप को देखकर मैं चकित रह जाती।

सायं खेलों के समय जब आप मस्ती भरे स्वर में गाते–''हमें बहका न कोई लाया है, आए हैं हम'' और हमसे पूछते कि–''क्या तुम्हें कोई बहकाकर लाया है?'' तब हम सभी बालिकाएँ एक स्वर में जोर से कहती–'नहीं'। फिर मन जैसे उन्मुक्त होकर नाच उठता और कहता कहाँ है नारी पर बन्धन और पाबन्दी? कोई यहाँ आकर तो देखे जहाँ हम निर्भीक होकर नाचती हैं, गाती हैं, खेलती हैं, अपने भाव–विचार प्रकट करती हैं, अपनी शंकाओं के समाधान पाती हैं। यहाँ केवल कहा ही नहीं जाता कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवता' बल्कि उसे (नारी को) वास्तव में पूजने योग्य बनाया भी जाता है।

बाबोसा की पारखी नजरें हर बालिका में छुपी प्रतिभा को बखूबी पहचान लेती। आपके प्रोत्साहन ने हमें सदैव आगे बढने का हौसला दिया। कभी लगता कि आप एक शिल्पकार हैं जो सजीव मूर्तियाँ गढता है और उनमें संस्कार रूपी प्राण फूंकता है। न जाने कितनी ही अनगढत और अस्त–व्यस्त मूर्तियों को आपने सही आकार में ढाला है। संघ में बालिका शिविरों के संचालन का चुनौती पूर्ण कार्य आपने सरल बना दिया। आपको याद करके मन गा रहा है कि–

''मेरे जीवन में ना मिटने के तेरे ये कदम,
तेरी बगिया में नाया पाया जनम।''

आपके द्वारा दी गई व्यवहारिक जीवन की शिक्षा सदैव हमारा पथ प्रदर्शित करती रहेगी, इसी के साथ हम सब बेटियों का आपको कोटि–कोटि वंदन–जय संघशक्ति बाबोसा।

(स्वर्गीय रतनसिंहजी नंगली को हार्दिक श्रद्धांजलि)

कर्मण्यता से ही यश मिलता है। – सुभाषित

सुआ धाई

– डॉ. ईश्वरसिंह चौहान

मात्र दस वर्ष की उम्र में उसे अपने मालिक की बेटी के साथ दहेज में दे दिया गया था। उसका पिता उसे भूल चुका था। हाँ, कभी-कभी माँ की याद उसे नींद से उठा देती थी। अब उसका यह नया संसार था। यहाँ बाईसा का स्नेह था और बाईसा के सासु की घुड़कियाँ भी, पहले-पहल उसे भीतर तक चुभती थी। फिर वो उसकी आदी हो गई। ऐसा चिकना घड़ा बन गई कि माजीसा कुछ भी बोले सुआ के मुँह पर तालाबंधी। उसने उस उम्र में एक और कला सीख ली थी। जब काम अधिक होता तो वो चुपचाप ओढ़कर सो जाती थी। तबियत के बहाने के आगे किसी की नहीं चलती। बारह-तेरह की उम्र में सिर पर घड़ा आ गया। बाहर की दुनिया से पहली बार पाला पड़ा था।

प्रारम्भ में वो गाँव के तालाब के पास वाले कुएँ में पानी भरने जाती थी। कुआँ बहुत गहरा था और सुआ छोटी, तो उसने दूसरी औरतों से एक समझौता किया। उनके घड़े सिर पर लेने में मदद करती और स्वयं उनसे पानी खींचवाती; परन्तु यह व्यवस्था खास चली नहीं। इसलिए स्वयं ही उन नन्हें हाथों ने पानी खींचना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे वो इस कला में माहिर हो गई।

लड़की जब घर से बाहर कदम रखती है तो पुरुषों को वो सार्वजनिक सम्पत्ति-सी लगती है। गाँव के मनचले लड़कों ने कुएँ की मुन्डेर को घेर लिया परन्तु वे इस लड़की की तासीर से वाकिफ नहीं थे। उसने एक मनचले के सिर पर बाल्टी ऐसे घूमा के मारी की वो चारों खाने चित हो गया। बाकी लड़कों ने जब उसके सिर पर खून देखा तो वे नौ दो ग्यारह हो गए, उस दिन सुआ का एक नया जन्म हुआ। मजाल है कि उसके सामने कोई आँख उठा कर देख सके। सूखे हुए बाँस में जैसे अग्नि की धधकती हुई ज्वाला विद्यमान होती है उसी प्रकार इस लड़की के व्यक्तित्व में भी स्वाभिमान की एक ज्वाला भभकती रहती थी। फिर तो गाँव की लड़कियाँ उसका घर से निकलने का इन्तजार करती थी। एक दृष्टि से वो लड़कियों की अघोषित लीडर थी।

सुआ अपने मालकिन को बड़ी बहन समझती थी। इसीलिए वो उन्हें हमेशा बाईसा और मालिक को जमाईसा कहती थी और दादीसा को दाता और दादोसा को दाता कहती थी। उसने गाँव में एक विशिष्ट छाप खड़ी की थी। जो बड़े थे उन्हें मामा, काका, मासा बा और छोटे थे उन्हें भाई कहकर सम्बोधित करती थी। मेरे तीन बुआ थी जिनमें से बड़े एक का विवाह हो गया था और दो अभी कुँवारी थे उनके लिए सुआ एक प्यारी सहेली थी और वे दोनों उसे छोटी बहन की तरह रखते थे। दादोसा के लिए वो एक चौथी बेटी थी। वो दोनों भुआसाओं को भी बाईसा ही कहती थी। जब उन दोनों का विवाह हुआ तब वो दूल्हा देखने और सगुन के कपड़े लेकर उनके ससुराल गई थी। वो सिलसिला हम तीनों भाई और भतीजी तक चला और प्रभु ने जीवन दिया होता तो आगे भी धाई ही जाती। हमारे लिए वो सुआ बुआ थी और बच्चों के लिए सुआ धाई। उसका व्यक्तित्व बड़ा ही साहसी था। लोकल भाषा में कह सकते हैं कि वो 'आदमी का वट थी।'

जब वो सत्रह वर्ष की हो गई तो दादोसा को उसके विवाह की चिन्ता हुई। उस समय दादोसा का राजनैतिक केरियर बड़ा अच्छा था। गाँव के प्रत्येक समाज में वे अव्वल थे। ग्राम पंचायत की स्थापना से लेकर स्कूल धर्मशाला के निर्माण तक में वो सक्रिय थे। सुआ बुआ जानती थी कि उनके दरबार में पुलिस के आला अफसर सलाम करने आते हैं। इसलिए किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है। पानी भरने वाली औरतों से अक्सर झड़प हो जाती थी। उन दिनों लगभग चौक अनुसार पंचायत ने नल लगवाए थे, जिसे 'चकले' कहा जाता था। पंचायत के सामने सार्वजनिक गाँव के चकले थे। वहीं सारा गाँव पानी भरने आता था। एक मोटी-सी औरत थी।

शायद उसका नाम कस्तुरी था और वो भी किसी की दहेज में आई हुई थी। उसका बड़ा रूआब था। वो अक्सर गाँव की सभ्य औरतों पर धौंस लगाती थी। कस्तुरी का खौप इतना था कि कस्तुरी जैसे ही पानी भरने आती थी, दूसरी औरतें अपना घड़ा हटा लेती थीं। वो अति झगड़ालू औरत थी और गुस्सा उसकी नाक पर रहता था। गालियाँ उसे सधी हुई थी। गाँव की औरतों के किस पुरुष के साथ प्रेम सम्बन्ध हैं, उसकी बड़ी जानकारी थी। वो बात अलग है कि उसमें सच्चाई कम और झूठ अधिक होता था। परन्तु बदनामी के डर से गाँव की अधिकांश औरतें उससे डरती जरूर थीं।

एक दिन सुआ पानी भरने गई। उसी समय कस्तुरी वहाँ पहुँची। उसने सुआ का घड़ा नल के नीचे से हटा दिया। सुआ उस समय मंदिर में दर्शन करने गई थी और वापिस लौटी तो उसने देखा घड़ा दूर पड़ा है और उसका घड़ा खाली है। उसने दूसरी औरतों से पूछा–''ये किसका घड़ा है?'' दूसरी औरतों ने कस्तुरी की ओर इशारा कर दिया। कस्तुरी उस वक्त आराम से वड़ की छाया में छिंकनी तान रही थी। उसकी चेलियाँ बबी, मघी, रानी सब उसका घड़ा भर रही थीं। सुआ की उनसे बनती नहीं थी। सुआ ने कस्तुरी से कहा–''कस्तुरी मौसी आज तो आपने मेरा घड़ा हटा दिया है; मैं कुछ नहीं कह रही परन्तु दोबारा अगर ये हरकत की तो ठीक नहीं रहेगा।''

कस्तुरी ने बात को हाथ से झिड़क दिया। बात को ऐसे अनसुना किया कि बबी दाँत निपोरने लगी। सुआ गुस्सा पी गई परन्तु मन ही मन तय किया कि इस बार ठन गई तो कस्तुरी मौसी गई काम से। सुआ का चुप रहना कई औरतों को खला चूंकि वे सुआ में अपनी रक्षक देखती थी। सुआ की दबंग छबि को कस्तुरी भी तोड़ना चाहती थी। वो झगड़े के मूड में थी परन्तु सुआ ने शान्ति बनाए रखी। इस घटना के सातवें दिन सुआ पीतल का घड़ा लेकर पानी भरने आई। वो घड़ा उसकी बाईसा को दहेज में मिला था। दाता ने खास हिदायत देकर भेजा था कि घड़े के एक भी खरोंच नहीं आनी चाहिए। सुआ उस दिन घड़ा रखकर गवरी गौराणी को यह कहकर मंदिर चली गई कि–''मेरी बारी आने पर घड़ा रख दे। मैं अभी आती हूँ।'' औरतें जैसे–जैसे आती थीं लाईन में अपना घड़ा रख देती थीं। जब नम्बर आता भरकर घर को प्रस्थान। उस दिन भी कस्तुरी अपनी पाँचों चेलियों के साथ नलकों पर आ धमकी। सारी औरतों के घड़े लाइन में पड़े थे। उन्होंने आते ही अपने घड़े नलों के नीचे भरने को रख दिए। सुआ का पीतल वाला घड़ा आधा भरा था। उसे उठाकर दूर पटक दिया। जिससे उसमें एक बड़ा सा गढ्ढा उभर आया। गौराणी विनंती करती रही कि वे ऐसा न करे परन्तु गौराणी की कौन सुने। नक्कार खाने में तूती की आवाज साबित हुई। थोड़ी देर बाद सुआ नलकों पर पहुँची तो उसने देखा उसका पीतल का घड़ा दूर औंधा पड़ा है और उसमें एक गढ्ढा पड़ गया है। उसने गौराणी से पूछा–''ये किसकी करतूत है?''

गौराणी ने बबी की ओर इशारा कर दिया। बबी तब पानी भर रही थी और बाकी चारों कस्तुरी के साथ बातें कर रही थीं। सुआ ने एक पत्थर उठाया और सीधा बबी के घड़े पर दे मारा। घड़ा धडाम से टुकड़े–टुकड़े होकर बिखर गया। फिर तो बबी जोर से चिल्लाई और सुआ की ओर झपटी जैसे भूखा कुत्ता भोजन पर झपटता है। सुआ अपेक्षित हमले के लिए तैयार थी। उसने पीतल का घड़ा हाथ में उठाया और आती हुई बबी के मुँह पर जड़ दिया। बबी के दो दाँत टूट गए। अब क्या था देखते ही देखते गाँव का सार्वजनिक नल क्षेत्र एक बड़े से युद्ध क्षेत्र में पलट गया। कस्तुरी अपनी दूसरी चेलियों के साथ हमले के लिए आगे बढी। सुआ ने हमला तेज कर दिया। चीते की तेजी से वो उछली और एक के सिर पर घड़ा दे मारा। खोपड़ी से खून के टसिए फूटने लगे। वो वहीं बैठ गई। तीसरी को एक लात मारी तो चौथी भाग गई। कस्तुरी ने अपना भारी भरकम शरीर हमले के लिए सज्ज किया परन्तु सुआ के वार को वो सह नहीं पाई और तालाब की ढालवाली पाल पर औंधे मुँह गिर गई। फिर ऐसे लुढ़की जैसे गेंद लुढ़कती है। उस लुढ़कने ने उसकी सारी हेकड़ी

निकाल दी। गाँव की औरतों ने इस संग्राम का बड़ा मजा लिया। उपस्थित औरतें तो कई दिनों से कस्तुरी नामक गढ़ के गिरने का इन्तजार कर रही थी। कस्तुरी धूल से सनी थी और बुरी तरह से काँप रही थी। उसका गला रुँध गया था। आवाज निकल नहीं रही थी। गालियाँ मुँह तक आती जरूर थी परन्तु निकल नहीं रही थी। कल तक डरने वाली औरतें आज उसकी खिल्ली उड़ा रही थीं। उससे उठा नहीं जा रहा था। पाँव पसार कर वो तालाब के तट पर ऐसे बैठी थी जैसे कोई काली भैंस बैठकर जुगाली कर रही हो। उसका चेहरा, बाल, कपड़े सब पर धूल का लेपन था। बबी ने पीछे से सुआ पर पत्थर से वार किया। सुआ के सिर से खून बहने लगा। परन्तु वो थमी नहीं। उसने बबी को एक और जोरदार प्रहार कर धरासायी कर दिया। फिर उनके घड़े जो मिट्टी के बने थे उठा-उठाकर उन पर फेंके। साक्षात् महाकाली तांडव कर रही थी। चारों तरफ घड़ों के टुकड़े फैले थे। उसमें कई दूसरी औरतों के घड़े भी लड़ाई की भेंट चढ़ गए परन्तु उन औरतों को इससे कोई अफसोस नहीं था। उन्हें तो कस्तुरी गैंग की पिटाई से बेहद खुशी थी। वो इस खुशी के ऊपर ऐसे सौ घड़े न्योछावर करने को तैयार थी। इस झगड़े की चर्चा पूरे गाँव में हुई। सुआ की बहादुरी जिसने भी सुनी सब कहने लगे ''ठीक किया''। चूंकि सबको पता था कि कस्तुरी गैंग बदमाश औरतें हैं और कईयों की औरतों के साथ उस गैंग ने बुरा बर्ताव किया हुआ था।

भीड़ इकट्ठी हो गई तो सरपंच ने पंचायत से जेठाभाई को भेजा। वे एक दुबले-पतले बुजुर्ग आदमी थे। जिनकी बड़ी ऊँची मर्दाना आवाज थी। उन्होंने सब को शान्त किया। औरतों ने अपनी चुनरियाँ फाड़कर सुआ को पट्टी बांधी। झगड़े में सुआ की चुनरी फट गई थी। बाल बिखर गए थे और मुँह पर खून बिखरा था। मुँह धोकर उसने पीतल के घड़े पर नजर की जो अब कई जगहों से गड्ढेदार हो चुका था। गड्ढे को देखकर उसके मन में दाता की तस्वीर उभर आई। जितना डर उसे कस्तुरी गैंग से नहीं लगा उससे कई गुना डर उसे घड़ा देखकर लगा। मन ही मन कहा-''सुआ दाता के आगे तेरी अब खेर नहीं।'' सुआ डरते-डरते घर पहुँची तो चुपके से पीतल का घड़ा उसने तुलसी के झुरमुट में छुपा दिया। परन्तु सिर की पट्टी उसके बाईसा को दिख गई। वो दौड़ के आई और सिर से बहता खून देखकर रो पड़ीं। आज सुआ को पता चला कि बाईसा उसे कितना चाहती हैं। सुआ के आँखों से भी आँसू फूट पड़े। फिर सुआ ने सारा वाकिया कह सुनाया। बाईसा को कस्तुरी पर बड़ा गुस्सा आया। गाँव भर में सुआ के प्रति एक सहानुभूति की लहर दौड़ गई थी। दाता ने जब घड़ा देखा तो उनके गुस्से का पार नहीं था। मेघ बरसने वाले थे परन्तु जब ओसरी में सुआ को पट्टी बाँधे सोया हुआ देखा तो स्नेह के झरने ने गुस्से की अग्नि को शान्त कर दिया। परन्तु जब उन्हें सारे घटनाक्रम की जानकारी मिली तब वो गुस्से की अग्नि कस्तुरी पर टूट पड़ी। जो गुस्सा सुआ पर फटना था वो कस्तुरी पर फूट पड़ा।

इतना होने पर भी दूसरे जागीरदारों ने सुआ को गुनहगार साबित करते हुए मेरे पिताजी को उलाहने के संदेश दिए। पिताजी को सुआ पर गुस्सा आया। वे सुआ को समझाते हुए कुछ कटु शब्द कह रहे थे परन्तु उसी समय दादोसा पधार गए। उन्होंने पिताजी को डाँटते हुए कहा कि-''सुआड़ी को क्यों डाँट रहा है? गलती इसकी नहीं थी, उन चुड़ेलों की थी। उन्हें तो मैं पुलिस से हथकड़ी डलवाऊँगा। क्या समझती हैं अपने आपको मेरी छोरी पर हाथ उठाने की हिम्मत कैसे की?'' जब इस बात की खबर कस्तुरी, बबी और अन्यों के पतियों को पड़ी तो वे पगड़ी उतार कर दादोसा से माफी माँगने आए। बात आई गई हो गई।

परन्तु पिताजी मन ही मन तय कर चुके थे कि अब सुआ के विवाह की नकेल डालनी ही होगी और उन्होंने गणेशा के साथ सुआ का विवाह तय कर दिया। गणेशिया सीधा लड़का था। पास के दादोसा की गवरी वजीराणी का दूसरा लड़का, कम बोलता था। गोल-मोल सुन्दर चेहरे का धनी था परन्तु जब शराब पी लेता तब

(शेष पृष्ठ 33 पर)

लोक देवता पीथल देव जी

– देवेन्द्रसिंह गौराऊ

लगभग 1200 ईस्वी में पृथ्वीसिंहजी का जन्म चौहान वंश में हुआ, ऐसी मान्यता है। बुजुर्गों द्वारा बताये अनुसार उनका जन्म गोगाजी चौहान के वंश में हुआ। इसके अनुसार उनका जन्म ददरेवा-गोगामेड़ी क्षेत्र के गाँव में हुआ। गौ वंश के रक्षार्थ अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए मलेच्छों के साथ युद्ध में उनका संहार कर गौ वंश की रक्षा की। यह युद्ध ग्राम सिरोही (तह. नीम का थाना, जिला-सीकर) में हुआ। पृथ्वीसिंहजी ने अपने साथी योद्धाओं सहित युद्ध कर गौवंश को मुक्त कराया। इस भीषण युद्ध में पृथ्वीसिंहजी का शीश सिरोही में कट गया पर उनका कबंध (धड़) अनेक शत्रुओं का संहार करते हुए लड़ता रहा। लड़ते-लड़ते उनका धड़ जो अश्वारूढ था ग्राम गौराऊ, तह-जायल, जिला-नागौर में आकर गिरा। प्रत्येक वर्ष चैत्र शुल्क पक्ष की चतुर्थी को ग्राम सिरोही जहाँ शीश गिरा वहाँ मंदिर में तथा इसी तिथि को ग्राम गौराऊ उनके मढ में भव्य मेले का आयोजन होता आ रहा है। दोनों स्थान पर जातरू दूर-दूर से आते हैं। वर्तमान में आवागमन के साधनों की उपलब्धि के कारण प्राय: हर रोज जातरूओं का आना-जाना रहता है। श्रद्धालु झुंझार बाबा के दर्शन कर मनौती मांगते हैं एवं पूर्ण होने पर सवामणी-प्रसादी आदि का चढावा करते हैं।

मान्यता अनुसार दैवीय चमत्कार सर्वप्रथम एक गायों के चरवाहा के साथ हुआ। गौराऊ से मगरासर पर पश्चिम में स्थित एक देवल पर एक दूधारू गाय का दूध हर रोज स्वत: ही निकल जाता था। दूध निकली हुई गाय का चरवाहा को पता चला जो एक जांगिड़ परिवार से था, तो उसने गाय पर नजर रखना शुरू किया। एक शाम जब गायों के घर जाने का समय हुआ तो गाय देवल पर गई और उसका दूध देवल पर निकलने लगा। चरवाहा ने कुपित होकर देवल पर कुल्हाड़ी से प्रहार करने का प्रयास किया लेकिन उसके हाथ प्रहार करने की स्थिति में ही स्थिर रह गये, हाथ हिले ही नहीं। चरवाहे ने इसे दैवीय चमत्कार मानकर मन ही मन नमन किया तब वह सामान्य स्थिति में आया। इस दैवीय घटना की जानकारी चरवाहे ने गाँव में दी तभी से लोगों का देवल पर आना-जाना प्रारम्भ हो गया। वहाँ एक छोटा चबूतरा बना दिया गया। यह पीथल देव जी का प्रथम पर्चा माना जाता है।

प्रथम विश्व युद्ध (सन् 1914-1919) में मित्र राष्ट्रों की ओर से देशी रियासतों की सेना ने भी भाग लिया था। जिसमें सरदार इन्फेन्ट्री एवं 17 पूनाहार्स जोधपुर (वर्तमान में टैंक रेजिमेन्ट) ने भी वर्तमान देश इजरायल में मोर्चा संभाला था। जिसके प्रथम कर्नल मेरे पड़ दादोसा राव बहादुर कर्नल ठा. धौंकलसिंहजी ओ.बी.ई. थे। इजरायल के तत्कालीन शहर हाइफा में पहाड़ों पर बने किले का सामरिक महत्त्व था। इसलिए वहाँ से जर्मन तथा तुर्की सेना को खदेड़ कर कब्जे में लेना आवश्यक था। यह दुष्कर कार्य जोधपुर एवं मैसूर रेजिमेन्ट के जिम्मे था। रणनीति के अनुसार मैसूर की सेना को किले के पीछे से एवं जोधपुर की सेना को पहाड़ी पर आगे से चढाई करनी थी। जोधपुर की सेना को नदी पार कर किले पर पहुँचना था। जोधपुर की सेना ने अद्भुत पराक्रम दिखाया और नदी के तेज बहाव को पार कर दुर्गम पहाड़ी पर चढाई शुरू की। किले में मौजूद शत्रु सेना द्वारा किए गये मशीनगन के हमले में गोलियों का सामना करते हुए किले पर कब्जा कर लिया गया। इस भीषण युद्ध में अनेक सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए। मेजर दलपतसिंह देवली को भी वीरगति प्राप्त हुई। शत्रु का पतन कर हाइफा शहर पर कब्जा कर लिया और सर्वप्रथम किले पर अमानसिंह जोधा ने ध्वज फहराया। इस युद्ध में ठा. धौंकलसिंहजी को पीथल देवजी के दैवीय चमत्कार का संकेत हुआ अत: युद्ध समाप्ति पश्चात गाँव आने पर पीथल देवजी का मढ निर्माण करवाकर सवामणी की। इस घटना को झुंझार बाबा का द्वितीय दैवीय पर्चा माना जाता है जिसको स्थानीय गायकों द्वारा छावली के रूप में झुंझार जी के जागरण में गाया जाता है। इस क्षेत्र में

झुंझार जी लोक देवता के रूप में पूजित हैं एवं मान्यतानुसार श्रद्धालुओं की मनोकामना भी पूरी होती है।

सुनते थे कि रात्रि को झुंझार जी की चिराग (ज्योत) मढ से निकलकर गाँव की परिक्रमा करती है। 1970 में जून माह की बात है मेरे को भी प्रत्यक्ष ज्योत के दर्शन हुए। उन दिनों में बिजली भी नहीं थी एवं न ही कोई गाड़ियों का आवागमन था। गर्मी का समय था, गर्म तेज हवाएँ चलती थी जिससे आसमान मिट्टी से आच्छादित हो जाता था। एक रात्रि जब गढ की छत पर सोए हुए थे, मढ में तेज प्रकाश हुआ। प्रकाश इतना तेज था कि आस-पास के पेड़ आदि दिखाई देने लगे। तत्पश्चात वह प्रकाश-पुंज मढ से बाहर आया और चिराग (ज्योत) के रूप में जैसे अश्वारूढ व्यक्ति लेकर तेज गति से उत्तर दिशा की ओर चलने लगा। काफी दूर तक जाता दिखाई दिया। उस दृश्य को याद कर आज भी रोमांच हो जाता है। यह एक प्रत्यक्ष दैवीय चमत्कार था।

गाँव में गायों आदि पशुओं में बीमारी आने पर या कोई कष्ट आने पर जागरण रखा जाता है। वर्तमान में भी झुंझार जी के चमत्कार के कई किस्से सुनने में आते हैं। समय-समय पर श्रद्धालुओं द्वारा मंदिर का विकास करवाया गया है। मंदिर के चारों ओर बड़ा औरण है, जिसमें पेड़ लगाये हुए हैं। इस क्षेत्र में चमत्कारों के कारण झुंझार जी की लोकदेवता के रूप में प्रसिद्धि है एवं सच्चे मन व श्रद्धा से स्मरण करने पर श्रद्धालुओं का कष्ट दूर होता है। इस धरा पर विरोचित कृत्यों का कभी अभाव नहीं रहा। पृथ्वीसिंहजी झुंझार जी के रूप में ग्राम सिरोही तथा ग्राम गौराऊ में पूजे जाते हैं। गौराऊ में बाबा का मंदिर पूर्वमुखी है जो पश्चिम में ऊँचाई पर स्थित है। झुंझार जी का यह वीरोचित वृतांत स्मृति एवं प्रत्यक्ष चमत्कार के अनुभव के आधार पर लिखा गया है। समय (सन् संवत) की त्रुटि हो सकती है। जन-मानस, श्रद्धालुओं के आराध्य बाबा पीथल देवजी को शत् शत् नमन्।

शेष पृष्ठ 31 पर

सुआ धाई

उसकी जबान खुल जाती थी। गवरी डोसी सुआ के व्यक्तित्व से परिचित थी। उसने मेरे पिताजी से कहा कि- ''मेरा लड़का सीधा है, पार पड़ेगी?''

पिताजी ने उसे आश्वस्त किया कि सुआ दिल की अच्छी है और वो घर सम्भाल लेगी। पिताजी की भविष्यवाणी सच साबित हुई। विवाह के बाद सुआ ने गणेशा की बड़ी सेवा की। धीरे-धीरे अपना घर बनाया। दोनों लड़कों को पाला-पोषा और उनकी शादियाँ करवाई। गणेशा बीच राह में उसे छोड़कर चला गया परन्तु हिम्मत के साथ सुआ ने जिन्दगी का सामना किया। हमारे घर से निकल कर उसने अपना घर जरूर बसाया परन्तु सदा वो हमारे घर की सदस्य बनकर रही। दादोसा और पिताजी के गुजर जाने पर वो इतनी रोई जितनी वो अपने पिता के गुजरने पर भी नहीं रोई थी।

हमें नहीं मालूम था कि हम सब की सुआ धाई गाँव भर की सुआ मौसी कोरोना का शिकार हो जाएगी। कोरोना का टीका लेने के बाद उसका बड़ा लड़का उसे अपने साथ ले गया। वहीं उसे पक्षाघात का झटका आया और बहुत बोलने वाला मुँह मौन हो गया। हम सबको आशा थी कि वो उठ जाएगी। कई बार बुखार को दस-पन्द्रह दिन तक झेलने के बाद भी वो अपने आत्मबल से खड़ी हो जाती थी परन्तु इस बार तो अपने प्रिय ओरड़े में ऐसी सो गई कि हमेशा के लिए हम सबको छोड़कर चलती बनी। लड़के कुछ दिन रहकर अपने कर्म पथ की ओर चले गए। सुआ और गणेशा के उस ओरड़े पर कुंडी चढ़ गई। मेरी माँ और सुआ की प्रिय बाईसा अब भी उस राह पर टक टकी लगाकर देखती रहती है जिस राह से सुआ बाईसा के झूठे संदेशों को सुनकर भी दौड़ी आती थी। जब घंटों खड़े रहने के बाद भी सुआ धाई नहीं दिखाई देती। तब उनकी आँखों के पौर से आँसुओं की लड़ी बनकर सुआ बह जाती है।

मेरे पास उन्हें समझाने के लिए कोई शब्द नहीं है। पीतल का घड़ा अब भी मजू के ऊपर औंधा पड़ा उसकी याद ताजी करवाता है। ●

अपनी बात

संसार में अलग-अलग क्षेत्रों में लोग कर्मरत रहते हैं। पर अधिकांश लोग ऐसे होते हैं जो मानते हैं कि हम उस कर्म से सम्बन्धित हर ज्ञान को जानते हैं। ऐसा मानना ही मूल रूप में अज्ञान है। यह भाव अपने में अच्छाई का अभिमान पैदा करता है और वही अच्छाई नहीं, बुराई है। संघ में भी अगर हम यह मानते हैं कि हम सब जानते हैं तो यह अज्ञान का ही रूप है और संघ में हमारे विकास की बाधा है। यही बात धार्मिक क्षेत्र में आती है। कोई अगर मानता हो कि मैं सब कुछ जानता हूँ तो उसके भीतर धार्मिक व्यक्ति का जन्म असम्भव है।

अज्ञान का बोध होना ही ज्ञान की दिशा में बढा पहला चरण है। अज्ञान का बोध अर्थात् मैं कुछ नहीं जानता, अज्ञानी हूँ, इस बात का बोध, इसकी जानकारी ही नहीं यह मानना भी कि मैं कुछ नहीं जानता। अज्ञान और बोध ये दोनों विरोधी शब्द हैं और यही सारा रहस्य है जीवन का। जिस व्यक्ति को यह बोध हो जाए कि मैं निपट अज्ञान में हूँ, उसके भीतर ज्ञान का पहला बीज शुरू हो गया। यह बोध ज्ञान का पहला बीज है।

अज्ञान का बोध आवश्यक है किसी भी साधना में। साधक सिद्ध नहीं है, वह साधना के माध्यम से उस ओर बढना चाहता है। अब अगर वह यह मान ले कि मैं जब जानता हूँ तो उसकी जिज्ञासा तो समाप्त हो गई तब वह क्या प्राप्त कर पाएगा। और यदि वह सब जानता ही है तो साधना की आवश्यकता ही क्या है? साधना तो प्रारम्भ ही तब होगी जब हम स्पष्ट बोध कर लें कि मैं साधना के बारे में कुछ नहीं जानता। यह बोध ही साधना का आधार बनेगा। आधार पर ही कोई भवन खड़ा होता है। नींव में ही पहला पाया रखना पड़ता है। फिर उस पर ईंट पर ईंट आती है और भवन बनता जाता है। यही बात व्यक्ति के निर्माण में लागू होती है। एकाएक कोई सिद्ध नहीं हो जाता है, अपने बोध को बनाए रखते हुए सीढी दर सीढी बढना पड़ता है।

संघ की साधना में हमने यह देखा ही है कि जो कोई ऐसा मानता है कि मैं जानता हूँ, वह आगे बढने की राह पर बढने की बजाए कार्य में मीन मेख निकालने में लग जाता है। परिणाम वही होगा, साधना रुक गई, तथा कथित ज्ञानी बनकर रह गया। इसलिए अपने आपको ईमानदारी से देखें तो स्पष्ट होगा अज्ञान का बोध। यही होगा साधना का बीजारोपण। ●

पृष्ठ 17 का शेष

यदुवंशी करौली का इतिहास

राज में अन्तिम पड़ाव सेवा गाँव, जो राव इनायती की जागीर में था में हुआ तथा करौली राज की सीमा में प्रवेश के बाद सबसे पहला रात्रि विश्राम परीता गाँव में हुआ। वहाँ से हाथी घोड़ों के लवाजमे के साथ पालकी में भगवान का करौली शहर में पर्दापण हुआ और महलों से लगे हुए वर्तमान भवन का निर्माण करवा कर मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई। मूर्ति की पूजा गौडीय पद्धति से होती है इसलिए सवाई जयसिंह से अनुरोध कर एक बंगाली गुसाईं परिवार एवं जती परिवार को करौली में लाकर बसाया गया। इनके राग भोग के खर्चे के लिए सत्ताइय हजार रुपए की जागीर भी भेंट की गई। कुछ समय बाद बैकुण्ठदास में स्थापित गोपाल जी की मूर्ति को भी इसी मंदिर में पास वाले कक्ष में पधराया गया, यह मूर्ति है जिसे राजा गोपालदास (अकबर के समकालीन) दौलताबाद विजय के समय वहाँ से लेकर आए थे और अपनी नई बसाई राजधानी बैकुंठपुर के गोपाल मंदिर में प्रतिष्ठित किया था। डांग में विराजमान चामुंडा माता की मूर्ति को भी कैला माता के मंदिर में स्थापित किया गया तथा माता का मंदिर बड़ा बनवा कर राज खजाने से पूजा अर्चना के खर्चे की व्यवस्था की गई।

अहमद शाह अब्दाली के ईस्वी सन् 1757 में हुए आक्रमण के समय उसके सेनापति जहाँखान द्वारा मथुरा के मंदिरों के विध्वंस का समाचार सुनकर राजा गोपालदास इतने व्यथित हुए कि एक सप्ताह के अंदर ही उन्होंने शरीर त्याग दिया। इनकी समाधि स्थल पर करौली में नदी गेट के पास इनकी भव्य कलात्मक छतरी बनी हुई है जहाँ इन्हें देव स्वरूप में पूजा जाता है। चंबल पर सबलगढ़ क्षेत्र में आज भी इन्हें ठाकुर बाबा के नाम से पूजते हैं और वहाँ मान्यता है कि जहरीले जानवर के काटने पर इनके नाम का बंध लगाने से जहर नहीं चढ़ता।

महाराजा गोपाल सिंह की मृत्यु पर इनके चचेरे भाई तुरसाम पालक करौली की गद्दी पर बैठे। **(क्रमशः)**

हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

श्री क्षत्रिय युवक संघ के जैसलमेर शहर के प्रांत प्रमुख

नरेन्द्र सिंह तेजमालता

को सहायक अभियन्ता (Aen) से अधिशाषी अभियन्ता (Xen) जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग के पद पर पदौन्नति होने की हार्दिक बधाई एंव शुभकामनाएं।

-: शुभेच्छु :-

गणपत सिंह अवाय	तारेंद्र सिंह जिजनियाली	भवानी सिंह मुंगेरिया	पदम सिंह रामगढ़	स्वरुप सिंह नेड़ान
शम्भू सिंह जिजनियाली	नरपत सिंह राजगढ़	सुरेंद्र सिंह म्याजलार	मनोहर सिंह सांकड़ा	महिपाल सिंह तेजमालता

मार्च सन् 2022
वर्ष : 59, अंक : 03

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह